सारा संसार

आरसीप्रसाद

उपन्यास

सारा संसार मेरा

आरिग पूडि

इस उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक हैं

प्रकाशक :

पंजाबी पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

●

प्रथम संस्करण
अक्तूबर, १९६२

●

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

●

शिवजी मुद्रणालय, किनारी बाज़ार,
दिल्ली में मुद्रित।

ARIG PUDI : SARA SANSAR MERA : Rs. 2.50

रामू पुल पर था—पुराना पुल, पानी में देख रहा था, तरह-तरह की परछाइयाँ—निश्चल-सा पानी। जमघट, बहुत से आते-जाते लोग, बस, कार, साइकिल। इधर काकिनाड़ा की बड़ी सड़क, इधर जगन्नायकपुर। पुल के आर-पार।

पीछे घंटाघर, कभी प्रकाश-स्तम्भ-सा था। जाने कब बनाया गया था, बहुत पुराना, अब तोड़ा जा रहा था—समय-सूचक यन्त्र समय-हीनता में समाप्त हो रहा था—नहीं, यह ग़लत है, कुछ अनुप्रास-सा है, सच नहीं—रामू सोच रहा था।

समय कभी सीधी लकीर पर नहीं चलता—भूत, वर्तमान, भविष्य। भूत—समय का चक्र, रहट, घड़ी की गोल-गोल डायल—बड़ा घंटाघर, बड़ी घड़ी न मालूम कहाँ है? म्युनिसिपेलिटी के गोदामों में।

म्युनिसपेलिटी—भगवान भला करे, म्युनिसपेलिटी का, सारी गन्दगी इस नहर में छोड़ देती है, जैसा इसकी अपनी बदबू काफ़ी न हो। और जगह लोग, सबेरे-सवेरे हवा खाने निकलते हैं, ठंडी-ठंडी, भीनी-भीनी ताजी हवा। और हम बदबू के मारे नाक बन्द करके उठते हैं।

पिताजी जिद्दी हैं, खब्ती, कुछ भी हो, मकान नहीं बदलेंगे। इसी नहर के किनारे भाग्य चमका है। कहते हैं दुर्गन्ध के कारण मकान बदलेंगे तो भाग्य भी आँखमिचौनी खेलेगा—भय—अन्धविश्वास। बुजुर्ग हैं, उनको भी अपने विश्वासों को रखने का अधिकार है, हूँ—रामू पैर-पर-पैर रखकर खड़ा हो गया, गौर से देखने लगा।

एक मोटर-बोट पाँच-पाँच बड़ी-बड़ी किश्तियों को समुद्र की ओर

ले जा रही थी, नहर के बीचों-बीच, पानी चीरती, लहरें थपाथप। छोटी-सी मोटर-बोट, बड़ी-बड़ी किश्तियाँ।

नज़र किनारे की ओर गई, घर की दीवार से सटा भाई का लड़का खड़ा था। पतंग हाथ में लिये, किश्तियाँ देख रहा था, पीछे कटहल का पेड़, फिर दुमंज़िला, ऊँचा मकान।

पिताजी, एक बड़ा परिवार, लड़के, पोते, नौकर-चाकर, बड़ा-सा घर भी तंग मालूम होता, दो कदम चले नहीं कि कोई-न-कोई टकराता है, तिस पर दुनिया-भर की चीज़ें, बढ़ती अमीरी, बढ़ती चीज़ें—मगर ? मगर, हाँ, सब इन किश्तियों की तरह। पिताजी मोटर-बोट हैं, जिधर मोटर-बोट उधर किश्तियाँ। हाँ, नहीं-नहीं, मैं पिताजी के साथ अन्याय कर रहा हूँ, इन ऊटपटाँग उपमाओं में सत्य को ढाँप-सा रहा हूँ।

रामू पीछे मुड़ा, पुल पर भीड़, सामने वह नहर, मुड़-मुड़ा कर कहीं गुम-सी हो गई। पाँच-दस कीकर के पेड़, फिर हरे-भरे खेत और नीले आकाश का नीला क्षितिज, अच्छी आबोहवा।

यह भी, पास जाओ तो आफ़त, न जाओ तो आफ़त, शादी करो तो आफ़त, न करो तो आफ़त, दोनों की तुलना नहीं हो सकती। 'तुम लेखक नहीं हो, डाक्टर हो'—रामू ने अपने को इस तरह कहा जैसे डाक्टरों के लिए उपमाओं में उलझना अनुचित हो।

काकिनाड़ा न खास शहर है न खास बड़ा बन्दरगाह हा। यही नहर समुद्र में जा मिलती है, उथला समुद्र, छः मील परे जहाज़ लंगर डालते हैं, ये किश्तियाँ ही माल ले जाती हैं, मोटर-बोट के पीछे-पीछे।

कितनी ही किश्तियाँ हैं, बड़ी-बड़ी भी, जो बर्मा जाती हैं, लंका जाती हैं, बड़े-बड़े मस्तूल, बड़े बड़े पाल, व्यापारी किश्तियाँ, सरकारी किश्तियाँ, मछियारों की किश्तियाँ, तमेड़े—नहर भरी पड़ी है। नहर के किनारे हवार्फ़ हैं, गोदाम हैं, यही बन्दरगाह है, किश्तियाँ आती हैं,

जाती हैं, दृश्य वही रहता है, बदबू वही, बदबू का आदी होना भी मुश्किल ।

रामू फिर मुड़ा, सिगरेट निकाल कर फेंक दी । कोई परिचित-सम्बन्धी आ रहे थे । इस तरह पीठ मोड़ ली, जैसे उन्हें देखा न हो—इन लोगों के अपने नखरे हैं, जाने अपने को क्या समझते हैं ? फिर भी—वे सम्बन्धी निकल गये, हो सकता है, वे भी रामू से मिलना न चाहते हों । रामू ने एक और सिगरेट निकाली और सुलगाई ।

दूर, घर से परे, एक छोटी-सी सफ़ेद किश्ती आ रही थी, सफ़ेद वरदी में गोरा अफ़सर । शान से चली आ रही थी किश्ती—एक मोटर-बोट, पाँच किश्तियाँ । एक किश्ती एक सवार, स्वतन्त्र, जहाँ चाहे जाये, जा भी तो रहा है, वहीं किनारे वाले मकान में, जहाँ एक एंग्लो-इण्डियन महिला चकला चलाती है, कोई मनचला अफ़सर । जहाज़ के फ़ौलादी जेल से छूटा है, कम्पास को देख-देख कर चलते-चलते ऊब गया होगा, अब बिना कम्पास के भटकने आया है ।

अभी सोच रहा था कि पुल के नीचे से तीर की तरह पतली, छोटी-सी किश्ती निकली, पति-पत्नी सैर के लिए चले थे, चप्पू मारते । सैर और बदबूदार पानी में, सड़े पानी में—यह संसार बदबूदार पानी—फिर वही उपमा ? न फँसो ।

रामू उस व्यक्ति को पहचान गया, वह इन्जीनियर था, काम पर जा रहा था । काम का काम, सैर की सैर । पत्नी पढ़ी-लिखी है, मन-पसन्द है, खूबसूरत है, क्यों न जाये ? अपनी किश्ती, मोटर-बोट से जुड़ी तो नहीं है ।

जो चीज़ ठीक उसकी नज़र के सामने और पास थी मगर जिसे वह देख न रहा था, यकायक वह देखने लगा, नहर के दोनों किनारे, बहुत-से खम्भे, नया पुल बन रहा था । इन्जीनियर की किश्ती, खम्भों के

पाम थी, नया पुल, पुराना घंटाघर, निर्माण-विनाश, चलता समय-चक्र।

रामू नीचे मुँह किये काकिनाड़ा की बड़ी सड़क पर चला—यह व्यथा में इधर-उधर के विचारों में फँस गया। कैसे फँस गया? आश्चर्य है, जैसे मेरे सामने कोई समस्या ही न हो। सब मुझ पर छोड़ दिया, और अपनी पसन्द भी बता दी, मारना चाहते हैं, मगर क्लोरोफ़ार्म देकर, क्या करूँ?

यही प्रश्न पिछले तीन दिनों से उसे घोट-सा रहा था। पहले भी यह प्रश्न उठा था, लेकिन परिस्थितियों का फेर कुछ ऐसा रहा कि प्रश्न उठा और बिना उत्तर पाये ही बैठ-सा गया, पर इस बार बात कुछ और है। मैं क्या करूँ?

वह सड़क पर थोड़ी दूर तक गया, फिर रिक्शा में सिनेमा देखने चला गया, वही तो शहरों में एक जगह है जहाँ फ़िक्र के सताये आराम-पसन्द लोग अपने को भूलने भागते हैं।

२

श्री बापिराजु अपने घर के पिछवाड़े में आराम-कुर्सी पर बैठे थे। नाई पैर दबा रहा था। पास पत्नी बैठी थी। शाम का समय। हवा का झोंका आता तो सामने के केले के पेड़ फड़-फड़ कर उठते। अन्यथा शान्ति।

घर में बच्चे थे, छोटे-बड़े, पर जब श्री बापिराजु घर में होते तो सब चुप रहते। खेलते बच्चे या तो बाहर सड़क पर चले जाते नहीं तो

चुपचाप पुस्तकें बाँचने लगते, पोते-नाती कोई भी उनके पास न आता. कुछ साल पहले तक पत्नी भी न आती थी, अब आती तो हैं पर बातें प्राय: नहीं होतीं।

बापिराजु पुराने जमाने के आदमी हैं, जो आधुनिक होने का भी प्रयत्न करते आये हैं। वे तभी बोलते जब बोलने की आवश्यकता होती—मितभाषी। रौबीले। संकेत-भर से उनके काम होते थे, घर के मुखिया, रामू की उपमा में मोटर-बोट।

रामू उनका चौथा लड़का है, उम्र पच्चीस-छब्बीस की है। पर अब भी उनके सामने सूखे पत्ते की तरह काँपता है। वाल्टेयर में मेडिसिन पढ़ रहा है। बी० एस-सी० पास है, मगर पिता के समक्ष नजर ऊँची करके खड़ा नहीं हो पाता। कोई भी नहीं खड़ा हो पाता, न बड़े भाई न बड़ी बहन, न छोटा भाई, न जान-पहचान के, सब उनके सामने गंभीर, उनकी गम्भीरता औरों को स्तब्ध-सी कर देती थी। और-तो-और बड़े-बड़े अफ़सर भी उनसे बातचीत करते घबराते थे। वे चुम्बक-से थे. व्यक्तित्व मे विचित्र आकर्षण, व्यवहार में आकर्षण।

श्री बापिराजु को कभी किसी ने किसी को डाँटते-डपते नहीं सुना, किसी पर धौंस जमाते नहीं देखा, पर फिर भी क्या घर वाले, क्या बाहर वाले उनसे डरते-से थे। चिल्लाने वाले कानाफूसी करने लगते, कानाफूसी करने वाले खिसिया कर चुप हो जाते, जाने क्या बात थी?

वे बहुत ही विनयशील, संयमी, समझदार थे। उनके बारे में बहुत-सी कहानियाँ है, पर किसी की हिम्मत नहीं कि उड़ती-फिरती अफ़वाहों की बाबत उनसे इशारा तक करे।

अब रईस हैं, पर कभी वह जमाना भी देखा था कि खाने को न मिलता था। बीस-बीस मील पैदल चले थे, क्योंकि [illegible] के लिये [illegible]

नहीं, बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते थे, न अच्छे कपड़े-लत्ते ही, कहीं कोई ठौर-ठिकाना नहीं, न आज का भरोसा न कल का भरोसा। फटे हाल। तब भी लोग, मजाल है, उनसे ऊट-पटाँग बातें करें। शहर से दूर एक दोस्त के बाग़ में रहते।

बर्मा से व्यापार था, दाल-चावल का। न मालूम भाव-ताव में क्या तूफ़ान आया कि बहुत-सा घाटा हुआ, व्यापार चौपट हो गया, मगर हरेक की पाई-पाई इन्होंने चुकाई, और खुद कंगाल हो गये, दुनिया का रुपया मार कर दिवालिया हो सकते थे, पर हुए नहीं। व्यापार में भी वे नीयत के आदमी थे।

दुनिया को दिया और अपनी सारी सम्पत्ति खो बैठे। उनके पिता ही उनसे नाराज़ हो गये, अलग हो गये, उनकी पहले भी पिता से नहीं बनती थी, अब तो दोनों में चीन की दीवार थी। वे अब भी जीवित हैं, अस्सी वर्ष की उम्र में भी आजकल के नौजवानों को त्रिढ़ाते-से लगते हैं। पिछले दिनों वे अपने बड़े पोते से कह रहे थे, 'तुम आदमी नहीं दवाई की बोतल हो, जब देखो तब बीमार,' उनके पोते हट्टे-कट्टे हैं, फिर भी उनके बाबा का यह कहना था।

पैंतालीस की उम्र में श्री बापिराजु की ज़िन्दगी ज्वार पर पहुँची, और यकायक उतर-सी गई, फिर शुरू की। बीस साल की मेहनत मिट्टी में मिल गई थी, पर मेहनत का अनुभव बना रहा। बाग़ वाले दोस्त की मदद से दोबारा व्यापार शुरू किया। दस-पन्द्रह साल में ही काफ़ी कमा लिया।

अनुभवी हैं, हर चीज़ को ठोक-पीट कर परखते हैं। अक्लमन्द इतने कि बातों-बातों में हड्डी तक जान लेते हैं, अमीरी बढ़ रही है, कारोबार बढ़ रहा है।

वे कभी ठीक तरह स्कूल न गये। छुटपन में आवारागर्द।

उद्धत। मगर अब धड़ल्ले से अंग्रेज़ी बोलते हैं। तेलुगु लिखते-पढ़ते हैं। हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं। परन्तु वे उन भाग्यशालियों में न थे, जिनको भाग्य तश्तरियों में मिलता है। खून-पसीना एक करके खुद अपने को बनाया था। इसलिए घमंड था, पर घमंड किसी को दिखाया न जाता था, लेकिन इसका अनुमान किया जा सकता था।

कम लोग ही उनसे बातचीत करते, सलाह तो और भी कम लोग देते, वे सुनते तो पर करते अपनी ही थे। किसी वक्त क्या करेंगे और कैसे करेंगे, कहना मुश्किल।

फ़ौलादी आदमी, दुनिया-भर के ऐश-आराम में वे रह सकते थे, पर अब भी वे मामूली-सी खटिया पर सोते हैं, कार रख सकते हैं, पर अब भी पैदल जाते हैं, बड़े मकान में रह सकते थे, पर अब भी वे किराये के घर में रहते हैं। वही रूखा-सूखा खाते हैं, नियमानुसार सोते हैं, उठते हैं।

कई कारोबार हैं, एक इंजीनियरिंग का कारखाना है, एक इलेक्ट्रिकल वस्तुओं का कारखाना है, चावल-दाल का व्यापार है, शूगर फैक्ट्री है, ईंटों का भट्टा है, और भी कितने ही काम, पर कहीं भी कोई स्ट्राइक नहीं, और यह सब उनके व्यक्तित्व के कारण।

जो उनको न जानते थे वे प्राय: सोचते कि बहुत बड़े हट्टे-कट्टे, कद्दावर, भयंकर आदमी होंगे, पर वे ठीक उलटे थे, कद तो बड़ा था, लेकिन बाँस-से दुबले, एकहरे, अच्छा स्वास्थ्य। साठ-बासठ की उम्र। मीठी-पतली आवाज़।

बड़ा परिवार, पाँच लड़के, दो लड़कियाँ, सिवाय रामू के कोई और स्कूल नहीं पार कर सका था। सब यों ही थे। काम पर लगा रखा था, पर श्री बापिराजु को उन पर अधिक विश्वास न था। न उनसे अधिक आशा थी। उनकी आशायें रामू पर केन्द्रित थीं। वे

उसको किसी साँचे में ढालते-से लगते थे।

पत्नी पास थी, नाई सामने था, पर वे चुपचाप कोई समस्या सुलझाते-से लगते थे—क्या करूँ? यह लड़का जैसे मैं कहता था वैसे करता था, मगर इस बार? शादी का मामला है, उसके अपने ख़याल होंगे, कहता क्यों नहीं? ऐसी बातें कही जाती हैं? कुछ करना ही होगा, नहीं तो हाथ से निकल जायेगा। उम्र ही ऐसी है, क्या करूँ?

जब से रामू को बुलाया था, यही प्रश्न बार-बार रह-रहकर उठ रहा था, और वे कोई निश्चित उत्तर न दे पाते थे। रामू की तरह वे सिनेमा भी देखने न जा सकते थे।

३

शाम ढल गई। अन्धेरा हो गया। भोजनादि से निवृत्त होकर श्री वापिराजु दुमंजिले पर चले गये। वराण्डे में इस तरह बैठना भी नित्य-कृत्य था। हर बात का, हर चीज का, हर काम का निश्चित समय था, नियन्त्रित जीवन।

कटहल के पत्तों के पीछे चाँद उग रहा था। नहर से परे, किश्तियों से परे, शहर सोने लगा था, नहर वाले घर चले गये थे। शान्त समय। शान्त वातावरण। केवल पास वाली एंग्लो-इन्डियन महिला के घर से पाश्चात्य मन्द-मन्द संगीत की छनी छनी-सी आवाज़ आ रही थी, परन्तु श्री वापिराजु उसे सुनते न लगते थे।

वे किसी की प्रतीक्षा में प्रतीत होते थे। समय हो गया था, दरवाज़े की ओर देखा, जैसे उस तरह देखने का भी कोई समय-बद्ध

नियम हो। उनके दूसरे लड़के आ रहे थे। मोहन राव। हाथ में थैली, दिन-भर का नकद रुपया। पास वाली मेज पर वे थैली रख कर वापस मुड़े ही थे कि उनके पिता ने पूछा, "रामू आया है कि नहीं ?"

"नीचे तो नहीं दिखाई दिया, ऊपर भी नहीं है।"

"हूँ,"

मोहन राव ने फिर जाना चाहा जैसे वहाँ खड़ा रहना उसके लिए कठिन हो रहा हो, लेकिन इतने में पिता बोल उठे, "उससे बातचीत की थी, समझाया था ?"

"जी नहीं, वह मिला नहीं, सोचा था कि अब बातचीत कर लूँगा, फिर ख़याल आया कि उससे बातचीत आप ही कर लें तो अच्छा होगा।"

"हूँ, और क्या सोचा था ?" श्री बापिराजु की नज़र ज़रा उठी, और मोहन राव की नज़र नीचे हो गई। इस बार उन्होंने जाने का प्रयत्न किया।

"कहीं यह भी तो किसी लड़की से प्रेम नहीं कर रहा है ? प्रेम परेम ..." श्री बापिराजु ने परिहास में मुसकराना चाहा, होंठ चपटाये भी, पर आँखें उनकी उद्विग्नता से उभर-सी रही थीं। "प्रेम के लिये बड़ी कीमत देनी होती है ...... पागलपन है, बिना भाव पटाये बेपरखा माल ख़रीदना है, रोक रहा था, कह दिया, वरना इसके कहने की ज़रूरत न थी, हाँ, जब वह मिले तो समझा-बुझा कर कहना कि जो सम्बन्ध हमने तय किया है वह हर तरह से अच्छा है, फ़ायदेमन्द है और मुझे पसन्द है, समझे।"

श्री मोहन राव सुनकर नीचे चले गये। उनकी उम्र तीस-बत्तीस की होगी। तीन बच्चे थे। कारोबार में हिस्सा था, अलग घरबार न था।

उसी घर में रहते। वे पिता के विशेष विश्वासपात्र पुत्र समझे जाते थे।

मोहन राव के जाते ही श्री वापिराजु को यकायक दस वर्ष पहले की घटना याद हो आई। यही प्रेम का झमेला। बीमारी! अब परशुराम किसी काम का न रहा। पत्नी के हाथ में कठपुतली है, बड़ी नाव जब टूटती है, तो कई तमंडे बन सकती है, बेपतवार की, यही हालत है, बाबा का थोड़ा-बहुत सहारा न हो तो रोज़ फ़ाकाकशी हो। प्रेम! क्या मिला? जो मिलना था वह भी खो बैठा। घर से गया, जाना पड़ा, जाते-जाते घाव ज़रूर कर गया, आखिर—यह मैं क्या सोच रहा हूँ, आँखें मूँदी, लम्बी साँसें लेते-लते खोलीं, चाँद कटहल की चोटी पर था, और अंग्रेज़ी संगीत चीख़ता-सा, कहीं चढ़ता-सा लगता था।

इस संगीत ने परशुराम को डस लिया, इस संगीत वाली ने उसे मोह लिया, यहीं आती थी वह ईसाई छोकरी, अब जो उसकी पत्नी बनी फिरती है, बिगड़ी, बाज़ारू स्त्री। उसे कहीं का भी न छोड़ा, तब परशुराम इण्टर पास कर चुका था। बी० ए० भी न हो पाया, ऊटपटाँग किताबें पढ़ता होगा, प्रेम वाले उपन्यास, बनी-ठनी लौंडी को देखकर बावला हो गया, भटक गया, उसी के पीछे चला गया। घर में सेंध करता गया, दरारें डालता गया, बड़ा लड़का, कितनी आशायें, हाथ से निकल गया। बच्चों वाले घर में मैं उस बाज़ारू, बदचलन स्त्री को बहू कैसे बनाता? अब भुगत रहा है, कभी आयेगा, माफ़ी माँगने—प्रेम की बीमारी का इलाज भी होता है, प्रेम पर जब ज़िम्मेदारी लदती है, तो प्रेम पर मर-मरा जाता है, और ज़िम्मेदारी रह जाती है।

लड़का खो बैठा, सब प्रेम के कारण। रामू को नहीं जाने दूँगा, इसे किसी की चंगुल में न फँसने दूँगा, फँसा भी होगा, निकालूँगा अच्छा लड़का है, सीधा-सादा, भोला-भाला, नहीं फँसा होगा, जल्दी शादी

करूँगा, अच्छी लड़की है, कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। तीन दिन हो गये हैं आये हुए कुछ नहीं कहा, फोन में बता ही दिया था फिर भी कुछ नहीं कहा। पढ़ा-लिखा जवान है, ज़ोर-जबर्दस्ती करना अच्छा न समझा। समझा-बुझाकर कहा तो कोई जवाब नहीं देता, उधर उन लोगों का दबाव है, लड़की वाले हैं, फ़िक्र होगी ही। आख़िर यह सोच क्या रहा है ? कुछ भी सोचे, मैं कल वचन दे ही दूँगा, मेरी भी तो ज़िम्मेदारी है। अगर इसने अब बात न मानी तो कभी न मानेगा। "हूँ, लोकू !" उन्होंने पुकारा। लोकराजू, उनका पुराना नौकर था, उन्हीं के घर में रहता था। उम्र भी बड़ी थी।

"रामू आया कि नहीं ?"

"जी अभी-अभी आये हैं, खाना खा रहे हैं। मालकिन वहीं हैं।"

"उससे कहना कि कल सवेरे मुझसे मिले।" वे उठे और अपने कमरे में सोने चले गये। सोने का समय हो गया था। कुछ भी काम हो, चिन्ता हो, वापिराजु निश्चित समय पर सो जाते थे।

रामू और उसकी माँ खाने के कमरे में थे। दोनों एक-दूसरे को कुछ कहना चाहते थे, कहने की कोशिश करते और कह नहीं पाते, वे कुछ कहें, और जाने क्या हो, आवाज़ गूँजे, और पिताजी के कानों में बात पड़ जाये तो ? सोते पिताजी उठ गये तो ? किया-कराया सब बिगड़ गया तो—माँ इसी उधेड़-बुन में चली गई।

रामू अपने बिस्तरे पर जा लेटा, नींद न आ रही थी। सिनेमा की कहानी याद आती तो कभी लगता कि उसकी अपनी कहानी ही सिनेमा की कहानी से लिपट रही थी, जहाँ न मिलती वह वहाँ मिलाने की कोशिश करता, अजीब खयाल, ख्वाब, निश्चय तब भी न कर पाया और थकी आँखें नींद लिये बन्द हो गईं।

४

सवेरे उठते ही पिता की नज़र बचाकर रामू ने कहीं चला जाना चाहा। अभी वह उठकर आँगन में आया था कि श्री बापिराजू स्नान-कक्ष से नहाकर आ रहे थे।

"रामू तैयार हो जाओ, सामर्लकोट जाना है। मैंने उनको वचन दे रखा है, तुम भी दे देना," वे तौलिये से मुँह पोंछते अन्दर चले गये।

अब रामू को आज्ञा का पालन करना पड़ा। वह तुरंत तैयार हो गया। उसके बड़े भाई भी तैयार थे। घर के बाहर कार थी। कार श्री बापिराजू के मित्र की थी।

किसी को कुछ कहने का समय न था। पिता चुप, गम्भीर बैठे थे। और उनको उस मुद्रा में पा, कम को ही उनसे बोलने का साहस होता था।

"शादी मेरी, जीवन मेरा, और इन्होंने वचन दे दिया, पूछा तक न। अब लड़की दिखा रहे हैं। मैं क्या कर सकता हूँ? कहूँगा भी तो कौन मानेगा? पिता हैं, पारम्परिक रूप से पुत्र के विवाह का उत्तरदायित्व उन पर है, मगर—मुझे भी तो अपनी जीविका के बारे में, भविष्य के बारे में, आवश्यक योजनायें बनाने का अधिकार है, अधिकार? यहाँ तो पहले कर्त्तव्य निभाना है—पिता की आज्ञा शिरोधार्य होनी चाहिये, एक कर्त्तव्य का पालन करता हूँ तो किसी और कर्त्तव्य की उपेक्षा भी तो कर रहा हूँ, सभी कर्त्तव्य हैं। मेरा व्यक्तित्व कहाँ है? यह व्यक्तित्व तो तब भी था जब बच्चा था, पिताजी ने इसे गढ़ा, और ढाला, अब उनकी आज्ञा को कैसे धिक्कारूँ? परंतु—

कार नहर के किनारे सीधी सड़क पर चली जा रही थी। सवेरे की ठंडी हवा मालिश करती-सी लगती थी। दूसरी ओर हरे खेत, इक्के-दुक्के नारियल के पेड़, हरियाली की कालीन, और कोई मौका होता तो रामू उनको देखता जाता। अब सामने देख रहा था, पिताजी की पीठ पर—वे ड्राइवर की बगल में बैठे थे।

'जाने इनमें भी क्या है ? सामने जाता हूँ तो उनकी ही बात सुननी पड़ती है, कुछ कहना भी चाहता हूँ तो कह नहीं पाता हूँ, पास आता हूँ तो उन्हीं की तरह सोचता हूँ। क्यों ? वाल्टेयर से चला था तो सोचा था कि कह दूँगा मुझे शादी-वादी नहीं चाहिये, और अब बरबस जा रहा हूँ, लगता है नाक में नकेल डाल कर कोई खदेड़कर कहीं ले जा रहा हो, इतनी बेबसी, इतनी विवशता, अगर······'

सामर्ल कोट पास आ रहा था, वहाँ की फ़ैक्टरी की ऊँची चिमनी दिखाई दे रही थी। स्टेशन के ऊपर, काला-काला धुआँ मँडरा रहा था। 'अब सामर्ल कोट आ गया, मैं क्या कहूँगा ? कहने को है ही क्या ? पहले ही सब तय कर लिया गया है, क्या मैं पिता को छोड़ सकता हूँ ? नहीं, कैसे उनका दिल तोड़ूँ ? सख्त ही सही दिल तो उनका भी है, यह बात ही न उठती अगर मुझे इन्टर के बाद, साहित्य में बी० ए० करने देते। मैं भी पढ़ जाता और कोई काम-धन्धा करता, नहीं तो उन्हीं के कारोबार में खप जाता। कोई फ़िक्र नहीं, परवाह नहीं, न जीविका की चिंता, न भविष्य की चिन्ता, परन्तु अब ? पिताजी क्यों नहीं कुछ कहते हैं ? इतनी दूर बात लाये हैं, क्यों नहीं सभी कुछ स्वयं कर लेते ? मैं भी एक प्रेमी हूँ, प्रेम के नाम पर लोगों ने राज्य छोड़े हैं, जानें कुर्बान की हैं, दुनिया-भर की मुसीबतें झेली हैं, लेकिन पुत्र का पिता के प्रति भी तो कुछ कर्त्तव्य है ? पिता को यह सब सोचना चाहिये आखिर मैं कर ही क्या सकता हूँ ?'

"रामू, खयाल रहे कि मैं उनको वचन दे चुका हूँ।" उसके पिता ने कहा।

'जब वचन दे दिया है तो मुझे लाने की क्या ज़रूरत थी?' रामू ने कहना चाहा पर कह न पाया। चुप रहा।

"तुम पैसे की कीमत समझो, छोटे हो, कई डाक्टर ज़िन्दगी-भर प्रेक्टिस करते हैं, पर चालीस हज़ार जमा नहीं कर पाते, समझे। पूरे अस्सी हज़ार दहेज में दे रहे हैं, कार ख़रीद रहे हैं, काकिनाड़ा में बंगला ख़रीद रहे हैं, और भी सब सामान देंगे, लड़की इकलौती है, माँ-बाप के बाद, लाखों की जायदाद मिलेगी।"

'ज़मीन-जायदाद जमा करना ही तो जीवन का उद्देश्य नहीं है। ज़मीन-जायदाद से ही तो सुख नहीं मिल जाता है?' रामू के मन में आया पर उसे कहने का साहस न हुआ।

उसी समय उसका भाई सोच रहा था, 'कई ऐसे भी तो डाक्टर हैं जिन्होंने लाखों रुपये कमाये हैं, किसी डाक्टर से शादी की, दोनों मिल कर प्रेक्टिस करेंगे, काम कमायेंगे, मज़ा करेंगे, मगर......' उसने भी न कहा। परन्तु उनके पिता उनके विचार जानते थे। वे अनिश्चित थे। वे कभी पिता के साथ रहते थे तो कभी रामू के साथ।

"तुम प्रेम और आदर्शों के झंझटों में न पड़ो, ये सब जवानी दिमाग़ के गुबार हैं, कहोगे कि प्रेक्टिस चल पड़ने पर तुम भी रुपया बनाओगे, यदि भगवान् ने साथ दिया। रुपया प्रेक्टिस के लिये अच्छा ही है, ख़राब नहीं है, आते को रोकना अक्लमन्दी नहीं है। कितने ऐसे खुशकिस्मत डाक्टर हैं जिनको शुरू में ही ये सब सहूलियतें मिली हैं? जो-कुछ तुम्हारे हिस्से का था उसका बहुत-सा भाग तुम्हारी पढ़ाई के लिये ख़र्च किया गया। प्रेक्टिस चलाने के लिये बहुत-सा रुपया दरकार होगा। मैं कारोबार से लेना नहीं चाहता, ये ऐसी बातें हैं जिनके बारे

में मेरे कहने की ज़रूरत नहीं है, तुम्हें स्वयं सोचना चाहिये, जो मुनासिब हो करो।" उसके पिता ने कहा।

"इतना सब कहने के बाद मेरे लिए कहने-करने के लिए बचा ही क्या रह गया है?" रामू सोच नहीं पा रहा था कि क्या करे। शिकंजे में था। एक तरफ़ सालों पुरानी दीवार, दूसरी तरफ़ दो-तीन साल की पुरानी मुँडेर और दोनों उस पर गिरते-से लगते थे। उत्तम पुत्र होने के लिए पिता का आज्ञाकारी होना आवश्यक है, और······? आदर्शों का पालना ही अनावश्यक है, यदि उन्हें कार्यान्वित करने का साहस न हो। उसके दिल में मथनी-सी चल रही थी कि कार यकायक रुकी। बगल में एक छोटा सा फाटक था। घर आ गया था, रामू चौंका और सम्भल कर पिता के साथ कार से उतरने लगा।

५

बाँस का फाटक, टूटी-फूटी चारदीवारी। जगह-जगह कूड़ा-करकट, खाद-गोबर का ढेर। मुरगियाँ, एक तरफ भैंस-गाय, बड़ा-सा अहाता था। घर छोटा सा। खपरैल का। दीवारें छोटीं, गोबर में पुती।

रामू का खयाल था कि जो अस्सी हज़ार रुपये दहेज में दे रहे थे कम-से-कम दुमंज़िले मकान में तो रहते ही होंगे। घर का यह भद्दा नक्शा देखकर वह दंग रह गया। मन-ही-मन हँसी आई, लड़की की कल्पना करने लगा।

घर के अन्दर गये कुर्सी के नाम पर एक तीन पैर की तिपाई थी। दीवार से सटे बड़े-बड़े धान के बोरे, गोबर और धान की मिली-जुली अजीब बू, कुछ नमी, घर के बाँसों में काले-काले धागों में रंगे छज्जे

लटक रहे थे। चार-पाँच खाट थीं, उसी पर उन्हें बिठाया गया। रामू के पिता इस गम्भीरता से बैठे थे जैसे किसी गद्दी पर बैठे हों, रामू का मन कभी हँसता तो कभी सिसकता—उसकी अनिश्चितता एक तरफ़ झुकती-सी लगती थी।

लड़की के पिता नीचे फ़र्श पर बैठे थे। मोटा, तपा बदन, कुरता नहीं, धोती भी घुटनों तक, कानों में बालियाँ, हाथ में कंगन। बड़ी-बड़ी मूँछें, पुराने ज़माने के आदमी, तमाखू के पत्ते से चुट्टा (सिगार) बना रहे थे। रामू न सोच सका कि हँसे या हँसी रोके।

"आजकल तो धान का दाम अच्छा होगा?" श्री बापिराजु ने मुसकराते हुए पूछा। मुसकराहट उनके मुँह पर फबती न थी। वे शायद चुप्पी तोड़ना चाह रहे थे।

"दाम तो अच्छा है, पर फ़सल कटी कि नहीं कि ये परकरयूमेन्ट वाले महाजन की तरह आ पड़ते हैं, धान जमा नहीं करने देते, अच्छा दाम नहीं पाने देते। नाकों दम है।" लड़के के पिता गँवारू भाषा में गँवारू लहजे में कह रहे थे। 'प्रोक्यूरमेन्ट' का यों कायाकल्प होता देख, रामू हँसी न रोक सका। मुँह मोड़ कर वह मुसकरा ही दिया।

वे कह ही रहे थे कि दो-तीन आदमी घर में आये। बड़े कलश, बाहर कहीं-कहीं दूध के धब्बे, दूध देकर आए थे। रामू अनुमान कर सकता था कि उनकी खेती-बाड़ी ही नहीं थी, दूध का व्यापार भी था।

वह घर सामर्ल कोट के कस्बे से कुछ दूर था, आध-एक मील। उसके बाद खेत थे। और सामने नहर, दो-चार फ़र्लांग के बाद गाँव, घर अलग था। क्यों अलग था, रामू समझ नहीं पा रहा था। कहीं गाँव वालों ने इनको बहिष्कृत तो नहीं कर रखा था! कौन जाने क्या बात है?

"जी, हाटल वाले को और दूध…" कलश लाने वाला कह ही रहा था कि लड़की के पिता ने कहा, "हाँ, हाँ, जाने दो, बाद में कहना, देखते नहीं मेहमान आए हुए हैं ?" रामू के अनुमान पर यकायक कल्पना की मोटी परत-सी जम गई।

फिर चुप्पी, 'चुट्टा' बना कर सुलगा कर वे बैठ गये। और लम्बे-लम्बे दम लेने लगे, गँवारू वेशभूषा ही सही, भाषा सही, पर उनके हाव-भाव में कुछ खानदानीपन दिखाई देता था, एक विचित्र शान…।

"पानी वगैरह मंगाऊँ ?" उन्होंने पूछा।

"जी।" रामू के पिता ने कहा।

श्री बापिराजु आज कुछ-कुछ शहरी हो गये थे, मगर पैदायश गाँव की थी। बाप-दादाओं का पेशा भी खेती-बाड़ी था। वे भी इसी तरह के वातावरण में पले थे, उनकी सारी जाति इसी तरह का एक ही ढर्रे का जीवन बिताती आ रही थी। अब नई पीढ़ी के लड़के-लड़कियाँ पढ़-लिखकर शहर आ रहे थे, पर बहुतों के विवाह इसी तरह के परिवारों में होते थे; अभी कई पीढ़ियाँ जायेंगी, तब जाकर ये कौड़ी-कौड़ी जमा करने वाले ज़िन्दगी जीना जानेंगे, खर्च करना सीखेंगे। कुछ ऐसी बातें बापिराजु के मन में मँडरा रही थीं। रामू के मन में भी शायद ये ही विचार उठते यदि उसकी नज़र लड़की के पिता पर न गड़ी रहती।

श्री बापिराजु इसलिये चाहते थे कि उनके बच्चे वहाँ से न चलें, जहाँ से वे चले थे। जहाँ वे चलना खत्म कर दें, वहाँ से वे चलें, यह उनकी अभिलाषा थी। महत्वाकांक्षा थी, इसीलिए लड़कों को पढ़ाया, पर वे पढ़ न पाये। एक यही डाक्टर बन रहा था, घराने के नाम को रोशन करेगा।

कुछ काम ऐसा, कुछ परिस्थितियाँ ऐसी कि उनका गाँव वालों से रिश्ता था, शहरवालों से भी, पर वे न जानते थे कि उनके बाद की

पीढ़ी इतनी शहरी हो गई थी कि गाँव वालों के लिये वह सहानुभूति खो बैठी थी।

इतने में एक लड़की बड़ा-सा थाल लाई। उसे तिपाई पर रख कर खम्भे के सहारे खड़ी हो गई, शर्माती निगाहें, सकुचाता चेहरा, लहराता सा बदन, मोटी ज़रीवाली बैंगनी रंग की साड़ी, गले में ढेर से गहने, कानों में कन्डील-सी बालियाँ, पाउडर की मोटी पुताई, शहरी बनने की कोशिश की गई थी, पर गँवार ही रह गई थी।

रामू की नज़र मुड़ी, नीचे मुँह किये ही उस लड़की को चोटी से एड़ी तक देखा, काले बालों पर सफ़ेद फूल, पैरों में चांदी के गहने, कमर में सोने की कमरबन्द। अँगुलियों में अँगूठियाँ, गहने चमचमा रहे थे। इतने सारे कि लड़की की ओर देखें तो गहने ही दीखते। रामू ने अपने भाई की ओर देखा, वे भी उसकी ओर टकटकी बाँधे देख रहे थे, चेहरे पर न खुशी न ग़मी, विचित्र उदासी-सी। रामू ने फिर लड़की की ओर देखा, 'ठिगनी, कुछ मुटियायी हुई, रंग भी इमली के बीज का-सा, नाक-नक्शा भी कुछ यों ही सा। स्त्री-सुलभ लज्जा अवश्य थी, पर वह आकर्षण न था, जो स्त्रियों में होता है। कुछ मर्दानगी-सी थी। कोई खिचाव नहीं, नफ़ासत नहीं, नज़ाकत नहीं, रामू को बिलकुल पसन्द न आई।

"कहाँ तक पढ़ी है ?" रामू के भाई पूछ बैठे। फिर अँगोछे से इस तरह मुख पोंछने लगे जैसे प्रश्न को पोंछ रहे हों।

"यही फ़र्स्ट फ़ार्म तक, देख ही रहे हैं, आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियां ? रामायण, महाभारत पढ़ लेती है, घर का हर काम-काज जानती है, और·· " लड़की के पिता शायद कुछ और कहते पर वह गहने खन-खनाती, मटकती-मटकती, लजाती-लजाती अन्दर चली गई। और वे चुप हो गए।

"तो कब विवाह तय रहा ? मैंने अस्सी हज़ार बैंक में जमा कर दिये हैं, हाथ में शादी के ख़र्च के लिये बीस हज़ार रुपया है, और अगर ज़रूरत हुई तो······" वे कह रहे थे कि रामू के पिता ने कहा, "काफ़ी है, ज्यादह की ज़रूरत न होगी।"

"फिर निमन्त्रण-पत्र छपवा दूँ ?"

"लड़के ने अब लड़की को देख ही लिया है, उसकी इच्छा भी मालूम करेंगे। कल आप हमारे घर आइये, वहाँ सब तय कर लेंगे।" रामू के पिता ने कहा।

"फिर भी······" लड़की के पिता ने चिन्ता-भरी उत्कंठा दिखाई।

"मैंने कह दिया न ? सब ठीक हो जायेगा, आप आइये।" रामू के पिता अपनी छड़ी पटक कर, कन्धे पर चादर ठीक करके कार की ओर चले, लड़की के पिता फाटक तक आये।

कार काकिनाड़ा की ओर जा रही थी लेकिन रामू के मन में वे सब विचार नहीं उठ रहे थे जो आते वक्त उठे थे। उसका मन वाल्टेयर पर मँडरा-सा रहा था।

६

"क्यों रामू पसन्द आई ? " रामू की भाभी ने पूछा। रामू भोजन कर रहा था। बग़ल में उसके भाई मोहन राव बैठे थे। उसकी भाभी भोजन परोस रही थी।

"क्यों कैसी थी ?" भाभी ने रामू को चुप पा फिर प्रश्न किया।

"कैसी क्या थी भाभी ? लगता था जैसे किसी मस्तूल पर सोना

फेर दिया गया हो, गहने-ही-गहने, भुनी-भुनाई बेंगन-सी, बिलकुल बद-सूरत, ठिगनी, फिर···" रामू कह रहा था।

"फिर क्या ?" भाभी ने जानना चाहा।

"फिर फ़र्स्ट फ़ार्म की ग्रेजुएट—घर का काम-काज सब जानती है, घर आयेगी तो तेरा काम हलका हो जायेगा, होम साइन्स में एक्सपर्ट है।"

"यानी तुम मान गये हो ? पहले-पहल सब ऐसे ही कहते हैं, तुम्हारे भाई भी तो शुरू-शुरू में मुझे यों चिढ़ाया करते थे।"

"और अब—?" उसके पति हँस दिये।

"भाभी, तुम भी क्या बावली हो ? मैं तो बकरा हूँ, चढ़ाया जा रहा हूँ, पिताजी की इच्छा पर। सब-कुछ उन्होंने कर ही दिया है, अब मैं क्या करूँ ?"

"अगर तुम्हें पसन्द नहीं है तो कह क्यों नहीं देते ?"

"कैसे कहूँ ? पिताजी वचन देकर मुकरेंगे नहीं, मेरी सुनेंगे नहीं, फिर क्या करूँ ?"

"तो तुम क्यों नहीं कहते ?" उसने पति की ओर देखा, पति उसे घूर रहे थे। उसे कई बार उन्होंने समझाया था कि वह इन बातों में दखल न दे, पर वह कुछ-न-कुछ कहती ही रहती, यह उन्हें पसंद न था। रामू भाभी को चाहता था, वह छोटा ही था कि जब भाभी घर आई थी भाभी भी छोटी थी, उससे सात-आठ बरस बड़ी, बस। और अब वह डाक्टर बन रहा था, और भाभी दो-तीन बच्चों की माँ हो गई थी।

"भाभी, तुम ही क्यों नहीं कहती ?" रामू ने पूछा।

"तुम अपनी माँ से कह देखो, मैं कहूँगी तो लोग कहेंगे कि मैंने तुम्हें उकसाया है।" उसकी भाभी ने कहा।

"क्या दुनिया में पैसा ही सब-कुछ है ?" रामू यों ही प्रश्न करके कुछ सोचने लगा।

"पैसा न हो तो दुनिया भी नीरस है, फिर पूरे लाख रुपये, किसमत वाले हो।" भाभी ने कहा।

"क्या किसमत वाला हूँ ? खाक, पैसा हो और मनपसन्द पत्नी न हो तो जीवन नीरस है, संसार नीरस है।"

"सब यही कहते हैं, फिर पैसे पर यों मरते हैं कि न पत्नी की फ़िक्र रहती है, न बच्चों की ही।" रामू की भाभी अपने पति पर ताना मार रही थी और वे चुपचाप बैठे थे।

"हूँ—घर क्या था अस्तबल, बदबूदार अस्तबल, बैठने को कुर्सी तक नहीं, कुछ नहीं।" रामू कह रहा था।

"कुछ भी न हो, लाख जो दे रहे हैं, काकिनाड़ा में मकान खरीद रहे हैं, तू तो वहीं रहेगा न ?" भाभी ने पूछा।

"कहीं भी रहूँ, मगर उनकी लड़की भी तो मेरे साथ रहेगी, भैया, आखिर वे मुझे अपनी लड़की क्यों देना चाहते हैं ?"

"क्यों न देना चाहें ? तू डाक्टर है, वे गँवार हो सकते हैं, पर वे गँवार रहना नहीं चाहते। एक डाक्टर को दामाद बनाकर वे भी सीना तान कर कहना चाहते हैं कि फ़लाना मेरा दामाद है, डाक्टर है," उसके भाई ने कहा।

"हूँ," रामू सोच रहा था।

"एक और बात भी हो सकती है, उनके छोटे भाई ने अपनी एक लड़की की शादी डाक्टर से की। लड़की को उन्होंने पढ़ाया-लिखाया था, कई बच्चे वाले हैं। ज़मीन-जायदाद भी इनकी जितनी नहीं है, और दोनों भाइयों में पटती नहीं है। उनकी लड़की की डाक्टर से शादी क्या हुई कि सब उनके पास जाते हैं, उन्हें डाक्टर के पास ले जाते हैं, वे

अनपति में प्रेक्टिस कर रहे हैं, यह भी सम्भव है।"

"हूँ,"

"ख़ैर, मुझे जाने दो," मोहन राव ने कुछ कहना चाहा, और कहते-कहते सहसा रुक गये, फिर रुक भी न सके। "ज़िन्दगी तेरी है, इसलिए तू अच्छी तरह सोच-समझ ले, इस तरह के मौके हमेशा नहीं आते, रामू के भाई एक साँस में दो सलाह देते लगते थे।

"रहते तो ऐसे हैं जैसे कोई कंगाल-कंजर हों, भाभी जानती हो? उनके घर दूध-दही भी बिकता है, निरे कंजूस मालूम होते हैं, और दहेज देने चले हैं पूरे एक लाख का।"

"अगर वे भी मजे में अन्धाधुन्ध खर्चें तो उनके पास पैसा कहाँ से रहेगा? रूखा-सूखा खाकर दमड़ी-दमड़ी जमा किया है, तभी पैसा है, हमारे-तुम्हारे पास क्या रहेगा? जितना आता है खर्च हो जाता है।" रामू के भाई ने कहा।

उनका भोजन समाप्त हो गया, वे हाथ धोते-धोते बैठक में गये, वहाँ आरामकुर्सी पर पिताजी का तौलिया पड़ा था, वे आराम करने चले गये थे।

"भैया, मैं इस घर में शादी नहीं करूँगा, मैंने तभी निश्चय कर लिया था, पर पिताजी से कह नहीं पाता था, माँ सुनने को तैयार नहीं है। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ?" रामू अपने भाई का हाथ पकड़कर कह रहा था।

"औरत की खूबसूरती ही तो सब कुछ नहीं है, पढ़ा लिखा न होना तो कोई गुनाह नहीं है, तुम्हारी भाभी क्या पढ़ी लिखी है? पर आते पैसे को न कहना बेवकूफ़ी है," रामू का भाई यह कहता-कहता आँगन की ओर चला गया।

"तो तुम भी यही कहते हो? तुम्हारी भी पिताजी की ही राय

है ?'' रामू पूछता रह गया और मोहन राव आँगन से बाहर सड़क पर चले गये।

रामू का खयाल था कि उसका भाई उसके साथ था। उसका रवैया भी कुछ ऐसा था अब वह भी पिताजी की तरह कह रहा था। क्या यह सचमुच उसकी धारणा है ? कुछ भी हो वह पिताजी से सहमत होना चाहता है।

'मैं क्या करूँ? क्या मैं इस लड़की से विवाह कर लूँ ? सारी ज़िन्दगी इस अनाड़ी लड़की के साथ काट देनी होगी, क्या मैं इसके साथ कभी सुख से रह सकूँगा ? कभी नहीं, कैसे कह सकता हूँ ? आखिर मैं यहाँ आया ही क्यों, शुरू में ही मुझे कह देना चाहिये था। मृणालिनी को धोखा दे रहा था, अब भुगत रहा हूँ, वह क्या सोचेगी ? पिताजी क्या सोचेंगे ? अगर घर से जाना पड़ा तो ? कहाँ जाऊँगा ? कैसे प्रेक्टिस जमेगी ? अभी तो एक साल पढ़ना भी है, कैसे पढ़ूँगा ? कैसे ?' प्रश्न उठ रहे थे, सिनेमा का समय न था ताकि उड़ते-चलते चित्रों से उन प्रश्नों को चलता करता। वह बैठक में ही चहलकदमी करने लगा।

७

रामू पिता से न कह पाया। उनके सामने भी न जा सका। पिता ऐसे निश्चिन्त थे कि उन्होंने उससे पूछने की आवश्यकता भी न समझी। कहा था, उसकी सलाह लेंगे, बात तक न की। क्यों करते ? सोचा होगा कि मैं उनकी बात को न ठुकराऊँगा···वह अपने बड़े भाई के घर से आ रहा था, उनके घर का कोई भी उस भाई से न मिलता था। किन्तु रामू

जब कभी काकिनाड़ा आता लुका-छिपा उनसे मिल आता था। भाभी को भी कुछ तोहफ़े दे आता, भाई ने अपनी मनपसन्द लड़की से शादी की थी। भले ही परिवार के और लोगों को वह पसन्द न हो। रामू को भी वह खास पसन्द न थी। पर उस कारण वह उनका बहिष्कार करना भी न चाहता था। शादी आदि के मामले को इतनी महत्ता देना ही वह ग़लत समझता था। और वह अपने वर्तमान मूड में उनकी प्रशंसा भी करने लगा था, जो मैं न कर सका वे कर तो सके, मैं भीरु हूँ।

रामू घर की ओर चला आ रहा था। नहर के किनारे-किनारे। 'मैंने सोचा था कम-से-कम भाई तो मेरी तरफ़ बोलेगा, पर ये भाई भी मेरा साथ नहीं दे रहे हैं, कह रहे थे, 'पत्नी खूबसूरत हो, पढ़ी-लिखी हो और पास पैसा न हो, तो घर नरक है, जिन्दगी दोज़ख है,' शायद अनुभव की कह रहे हैं। उनकी पत्नी तीन बच्चों की माँ होने के बावजूद अब भी देखते ही बनती है। मगर उनका जीवन क्या है? न घर के रहे न घाट के।

'किन्तु मैं तो डॉक्टर हूँ, हाँ, बन रहा हूँ, पेशा होगा क्यों मारा-मारा फिरूँगा। उस हालत में मैं क्यों ऐसी लड़की से शादी करूँ जिससे मैं दिल की बात नहीं कह सकता, जो मेरी ज़िन्दगी नहीं समझ सकती। घुलमिल कर रह नहीं सकता। माता और पिताजी भी तो रहते हैं? रहते है, लेकिन दो चुप दीवारों की तरह, पिताजी अपनी दुनिया में, माँ अपने घेरे में···रूखी ज़िन्दगी।

'जीवन की, जीवन के सुख की कल्पना कुछ और है, नहीं-नहीं, मैं यह शादी नहीं कर पाऊँगा। अगर मेरी ज़िन्दगी में किसी और स्त्री का प्रवेश न होता तो दूसरी बात थी, जो पिताजी कहते, भाग्य की दुहाई देता करता मगर अब?···नहीं, मैं यह शादी नहीं करूँगा।'

इसी उधेड़-बुन में वह घर पहुँचा। माँ रसोई में बैठी थीं। भाभी भी

नहीं थी। शायद पति की आदतें पत्नी में स्वतः आ जाती हैं। तीस-पैंतीस वर्ष का लम्बा दाम्पत्य, रामू की माँ भी मितभाषिणी और गम्भीर प्रकृति की हो गई थीं, और कोई माँ होती तो रामू से पूछ बैठती ? 'क्या कहते हो शादी के बारे में ?' पर उन्होंने उसे देखा और कुछ न पूछा।

"माँ, मैं उस लड़की से शादी नहीं करूँगा," रामू ने बिना किसी भूमिका के सीधे ढंग से अपना निर्णय सुना दिया। वह वहाँ खड़ा भी न रह सका, कि कहीं ऐसा हो माँ दलीलें देने लगे और उसे भी दलीलें देनी पड़ें। वह दलीलों में न फँसना चाहता था, दोनों तरफ़ बहुत कुछ कहने को था। कहा गया था, और अब भी कहा जा रहा था।

वह कुछ दूर गया था कि माँ की आवाज़ सुनाई पड़ी, "रामू !" उसे वापस जाना पड़ा।

"तुम बड़े हो, समझदार हो, बड़े होकर तुमने यही सीखा है कि बूढ़े माँ-बाप का दिल दुखाओ ? यह तुमने क्या कहा ? मैंने और तुम्हारे पिता ने निश्चय कर लिया है, तुम्हारे भाइयों का भी यही कहना है, क्या तुम ?" उन्होंने रामू की ओर देखा और रामू सिर नीचे किये खड़ा था। फिर वे उठीं और रामू के कन्धे पर हाथ रख कर उसे बैठक में ले गईं, जैसे यह न चाहती हों कि उनकी बातें उनकी बहू सुने. सास जो ठहरीं।

"तुम्हारे भाई ने तुम्हारे पिता की मर्ज़ी के खिलाफ़ शादी की, देख रहे हो, क्या बीत रही है उन पर ? पिताजी, यह न समझो कि इस बात पर शोक नहीं करते हैं, दुनिया के धक्के खा-खा कर उनका दिल पथरा-सा गया है, वे अपना दुख भी नहीं दिखा पाते। उन्होंने वे दिन देखे हैं जब उनके पास एक पैसा न था, मैंने रोजमर्रे के गुज़ारे के लिए सब जेवर-जवाहरात बेच दिये थे। तब तू बहुत छोटा था शायद

याद न हो, वे नहीं चाहते कि उनके बच्चों पर वैसे बुरे दिन आयें, मैं नहीं चाहती, लाख रुपये का दहेज है, लड़की खराब नहीं है, काली होने से तो कोई बदसूरत नहीं हो जाती ? स्त्री तो विना पढ़ाई-लिखाई के भी स्त्री रहती है, उसको तो कोई पेशा कारोबार नहीं करना है।' इन बातों के बारे में न सोचो, ये कतई मामूली हैं, अगर तुमने भी वही किया जो बड़े भाई ने किया है, तो जान लो हम दोनों ज़िन्दे नहीं रहेंगे। हम तुम पर आशा लगाये बैठे हैं।" कहती-कहती वे रुक गई। उनका गला रुंध गया। रामू के गालों पर आँसू लुढ़क आये।

"बेटा, यह शादी का मामला है, सारे- ख़ानदान का मामला है, तेरे अकेले का नहीं है, अगर तुझे मनचाही लड़की से ब्याह करने का हक है तो हमें भी मनचाही बहू पाने का हक है। माँ-बाप होने के नाते हमारे भी कुछ अधिकार हैं और तुम्हारे कुछ कर्त्तव्य है, ये बातें कही नहीं जातीं। मैं न जानती थी कि तुम इतने नादान हो और इन बातों पर न सोचोगे। हमारा यह निश्चय है, आगे तुम्हारी इच्छा।"

"माँ ! माँ !!" रामू सिसकता रह गया कुछ कह न पाया। उसके विचार कलाबाज़ियाँ खा रहे थे।

"तुम्हारे पिता वचन दे चुके हैं, कल वे आयेंगे, विवाह की तिथि निर्णय करेंगे। बेटा, हम तुम्हारा अहित तो करेंगे नहीं, तुम बच्चे हो, हमने दुनिया देखी है, तजरबा पाया है, वही करेंगे जो तुम्हारे लिए अच्छा है। बेटा, औरत की शक्ल में सुख की कुंजी नहीं होती, फिर लड़की की शक्ल भी कौनसी खराब है ? मैं देख आई हूँ, गहने पहन कर जब खड़ी होती है, तो लक्ष्मी-सी लगती है।"

रामू वहाँ से चला गया, क्या कहता, अगर कहने को बाकी रह जाता तो कहता भी।

शाम को, अँधेरा होने के बाद, पिता आये। रामू को बुलाया गया। "क्या कहते हो?"

रामू चुप रहा, न हाँ कहा, न नहीं।

"वे सवेरे आ रहे हैं, इस मई में शादी हो जायेगी, तब तक तुम्हारा हाऊस-सर्जन का कोर्स भी पूरा हो जायेगा, क्यों?"

रामू चुप रहा,। प्रेम में यदि अधिकार की भावना हो तो उसका प्रभाव भयंकर होता है, कभी-कभी अत्याचारपूर्ण भी। रामू यह बिना किसी विश्लेषण के अनुभव से जानता था। माँ से बातचीत होने के बाद तो उसने निश्चय कर लिया था. जो कुछ माँ-बाप करेंगे उसे स्वीकार्य होगा।

"कहते क्यों नहीं? तुम्हे कोई आपत्ति नहीं है न?"

"जो आपकी इच्छा हो कीजिये," रामू ने कहा और दिल पर हाथ रख कर लम्बी-लम्बी साँस लेता चला गया।

अगले दिन कन्या-पक्ष वाले आये, श्री वाणिराजू ने अपने पुत्र का विवाह निश्चित कर दिया।

कहीं इक्के-दुक्के पेड़, मुड़ कर वह बीच की ओर चल दिया।

शनिवार था, शाम, वह प्रायः मृणालिनी के साथ इसी समय बीच पर घूमने निकलता था। उसी पेड़ के नीचे से वे ऊपर पहाड़ की ओर देखते। अब अकेला था, मृणालिनी का सामीप्य अनुभव कर रहा था, पर वह वहाँ न थी।

बड़े-बड़े महल, राजा-महाराजाओं के सूने-से पड़े थे। श्मशान की शान्ति-सी, सड़क सूनी, केवल समुद्र का गर्जन, अन्यथा सर्वत्र नीरवता। रामू आगे बढ़ता जाता, आनन्द गजपति रोड पर, विशाखापट्टनं के महारानी पेट से, वाल्टेयर की ओर।

वह स्वयं मृणालिनी को बुलाकर साथ लाता, आज न गया। जब से काकिनाड़ा से आया था, उसे देखते हिचकता था, डरता था। अगर पूछ बैठी तो क्या जवाब दूँगा? वह क्या सोचेगी? ये सब मर्द ऐसे ही हैं, प्रेम का दिखावा करते हैं, और स्वार्थ के लिये मरते हैं। जाने क्या कहे? क्या सोचे?

परसों अस्पताल में दिखाई दी, वराण्डे में मैंने देखा, और वार्ड में घूम गया। जैसे देखा ही न हो, नज़र बचाता निकल गया। यह अच्छा काम न था। शरीफ़ इस तरह नहीं करते, मगर कैसे देखता? अब तो उसकी शक्ल देखते ही दिल में काँटे चुभने लगते हैं और मैं उसको मुसकराता सामने पा कैसे कहूँ? मैं उसके साथ अन्याय कर रहा हूँ? पिता की तुलना में मृणालिनी हल्की उतरेगी, एक ओर भविष्य का आकर्षण, दूसरी ओर भूत का खिचाव, क्या करूँ,? अब क्या करना है? सब कुछ हो जो गया है।

कुछ दिन पहले यहाँ इसी बेंच पर मृणालिनी ने कहा था, 'दोनों मिल कर प्रेक्टिस करेंगे, इस ग़रीब भारत देश में डाक्टरों को बड़ी-

बड़ी फ़ीसें वसूल नहीं करनी चाहिये, सेवा-भाव आवश्यक है, अगर पैसा ही कमाना हो तो डाक्टरी पढ़ने की क्या जरूरत ? व्यापार किया जा सकता है। पैसे ही तो कमाने हैं। कितने ही लोग बीमार होते हैं, पर बीमारी का इलाज नहीं करवा पाते। उनको भी तो ठीक करना है, अगर एक व्यक्ति बीमार है और बीमार रहने दिया जाता है, तो उस हद तक सारा समाज बीमार है, डाक्टर के नाते हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं, मैं यह नहीं कहती कि हम कमायें ही न, हर कमाई के लिए इनसानियत का हलाल कर देना ठीक नहीं है, हाँ, हाँ,' रामू याद कर रहा था, वह गर्दन पर हाथ रखकर पुनः गुनगुनाया, 'अब मैं हलाल हो रहा हूँ।'

'पति के थोड़े-बहुत पैसे पर ही पढ़ रही है, इसलिये अपनी पढ़ाई का उपयोग सेवा में करना चाहती है। कोई बात नहीं ......रामू एक बड़े उद्देश्य को यों छोटा न करो,' उसे तुरत लगा।

'मृणालिनी में क्या खराबी है ? मगर अच्छाई और खराबी के बारे में पूछ ही कौन रहा है ? यही तो न कि वह एक बार विवाहित हुई थी, विधवा है, अपनी जाति की नहीं है, उम्र में दो-चार वर्ष बड़ी है, क्या हुआ ? शादी हुई थी बचपन में, वैवाहिक जीवन तो नहीं बिताया था ? बिताया भी होता तो क्या हो गया ?

'वह भी यह जानती है, इसलिये पहले मिलने में भी हिचकती थी, मैंने ही उसे प्रोत्साहित किया, और जब सम्बन्ध समीप का हो गया, तो मैं दूर हटाया जा रहा हूँ। इसमें उसका का क्या कसूर है ? फिर मेरा भी क्या कसूर है।

'विधवा थी, घर वालों ने ठीक तरह न देखा, दुनिया ने ठीक तरह न देखा, मुसीबतें झेलीं, और मुसीबतें झेल कर कई दूसरों को तंग करना चाहते हैं, दूसरों को भी उसी चक्की में धकेलते हैं, जिसमें से वे

हाय-हाय करके निकले हैं, पर कई में सेवा की भावना पैदा होती है, सोचते हैं जो हम पर गुज़री है, किसी पर न गुज़रे, मृणालिनी उसी श्रेणी की है, जाने कितनी योजनाएँ बनाई थीं, आदर्श चिकित्सक की कल्पनायें की होंगी, अब वे सब धराशायी हो जायेंगी क्या ? हवाई किले ······ ।

'उसने पास आना भी उचित न समझा, बहुत दिन आई भी नहीं, पाँच साल लगे, जब विवाह का आश्वासन दिया तब भी हिचकती-हिचकती आई । शायद तब भी न आती यदि मैं न कहता कि मैं भी उसके सेवा-कार्य में हाथ बटाऊँगा । इस देश में अकेली स्त्री सेवा भी तो नहीं कर पाती, सब कहीं कानाफूसी, हर कोई उंगली उठाता है । तो क्या प्रेम न था ? प्रेम है क्या चीज ? हां, प्रेम है क्या चीज़, पिताजी भी परिहास करते-से लगते थे, इन फ़िल्मों ने प्रेम का मज़ाक कर रखा है । कई तरह के प्रेम हैं, शारीरिक प्रेम से परे, आदर्श प्रेम भी है, वह भी प्रेम है जिसमें सहयोग है, सहभाव है, हाँ हाँ ।'

रामू महलों से परे चला गया, सड़क सुमद्र के पास आ गई थी, पीछे वाल्टेयर का छोटा-सा लेटा-सा लाल पहाड़ था । वह एक पत्थर पर बैठ गया, चिंघाड़ते सुमद्र को ग़ौर से देखने लगा । उसके मन में वे ही विचार लहरों की तरह थपेड़े मार रहे थे, विचारों से जब बचने की कोशिश करता तो न जाने क्यों वरदी पहना वह अफ़सर, इञ्जीनियर उसकी पत्नी, भय्या, काकिनाड़ा की गन्दी नहर, एक साथ यकायक चक्कर काट जाते । वह चौंक पड़ता और उन्ही विचारों पर वापस आ जाता ।

'मैं भी क्या था, एकदम आवारा, बेफ़िक्र, फक्कड़, पिताजी ने कालेज में भरती कर दिया, डाक्टरी पढ़ने लगा, उन्हीं के कहने पर बी० एस-सी० तक पढ़ा था, कोई उद्देश्य नहीं, आदर्श नहीं, अगर मृणालिनी का

साथ न होता तो एक श्रेणी में तीन-तीन साल लगाता और तब भी पास न होता। इस मृणालिनी ने मेरे में नया उत्साह जगाया, वह दिन-रात मेहनत करती, श्रेणी में तेज, मुझे पढ़ने के लिये प्रेरित करती, मुझे डाक्टर बनाया, आदमी बनाया। और अब मैं उसके साथ जानवरों का-सा भी व्यवहार नहीं कर रहा हूँ। लानत है मुझे।'

यह सोच ही रहा था कि उसके सामने उस लड़की की, जो उसकी पत्नी होने जा रही थी तसवीर-सी आ गई।———ठिगनी, बेपढ़ी, बदसूरत, बैंगन-सी। फिर यकायक मृणालिनी का मुखड़ा आया। कमल-सा खिला चेहरा, गौर वर्ण, मुँह पर सौम्य सात्विकता, श्वेत वस्त्र। सुन्दर विचित्र आकर्षण, विचित्र प्रभाव।

'और मैं? मैं अभागा हूँ, मैं भी क्या कर सकता हूँ? पर मुझे उसे अनादृत करने का क्या अधिकार है? मगर जिसने दुनिया में इतना किया है, क्या मेरी विवशता को नहीं समझ सकेगी? पर बताऊँ तब, कैसे बताऊँ?'———वह झटके के साथ उठा और वापस हास्पिटल की ओर चल पड़ा। उसके मन में ये ही विचार चक्कर लगाने लगे थे।

६

हाउस-सर्जन था रामू। कोई परीक्षा न देनी थी। न कोई पाठ्य-क्रम ही था। अस्पताल में हाजिरी देनी होती थी, अगर परीक्षा होती तो रामू अवश्य फेल होता, वह पढ़ न पाता था, अगर कुछ पढ़ता भी तो कुछ का कुछ सोचने लगता, और सोचते-सोचते कहीं का कहीं पहुँच जाता। कहीं मन न लगता। मृणालिनी के पास जाता अवश्य पर उसे देखने का साहस न बटोर पाता, और सोचे बगैर भी न रह

पाता, अस्पताल भी न जाता ।

अपने कमरे में पड़ा रहता, न ठीक खाता, न सोच पाता, न कुछ करता-कराता, सिगरेट फूँकता और शाम होती तो सिनेमा देखने निकल जाता। सिनेमा देखकर आता तो बिस्तरे पर पड़ा रहता, कराहता, करवटें लेता————बुरी हालत थी ।

'पिताजी क्यों चाहते हैं इतना दहेज ? शादी मेरी होगी, पैसा वे लेंगे ? नहीं, यह भी मैं क्या सोच रहा हूँ, बड़े भाई के बारे में निराशा हुई, छोटे भाई के बारे में निराशा हुई, बहुत कोशिश की पर पढ़-लिख न पाये । गोपाल भाई भी यों ही रहे, वे थर्ड फ़ार्म तक भी न आये, सारी ज़िन्दगी अब ईंटों के भट्ठे में काट देंगे, पिताजी मेरे भरोसे ही हैं, मुझे निराश नहीं करना चाहिये ।' रामू विस्तर पर लेटा-लेटा सोच रहा था । ये ही बातें पिछले दिनों उसके मन में भिन्न-भिन्न रूपों में उबल रही थीं ।

'भाइयों को दहेज मिला, पिताजी ने कारोबार में लगा दिया, अपने दोस्तों का पैसा वापस दे दिया, भाग्य ने साथ दिया, व्यापार बढ़ा; जब लाख रुपये मिलेंगे, दोस्त का बाकी पैसा भी दे देंगे, सारा व्यापार अपने हाथ में ले लेंगे । लोग कहते हैं, यदि पैसे का पागलपन चढ़े तो पिता बाल-बच्चों की फिक्र नहीं करते, सोचते हैं पैसा जुटा दिया जाए तो बच्चों के लिये कुछ और करना बाकी नहीं रह जाता, पर क्या पिताजी भी ऐसे हैं ? शायद नहीं हैं ।

'यह समाज भी खूब है, अजीब इसके मूल्य, अजीब इसकी चाल-ढाल, डाक्टरों को वह मान्यता दी जाती है जो लखपति को नहीं दी जाती है । जो पिताजी ने स्वयं अपने हाथों कमाया है, अपनी होशियारी से, अपनी अक्कलमन्दी से, पर उनको इतनी मान्यता नही मिली, यह

ज़रूर है कि सरकारी अफ़सरों पर उसका रौब है, मुहल्ले वालों पर उसका दबदबा है लेकिन इससे अधिक क्या है? [illegible] का नाम ले, नाम लेकर सलाम करे, [illegible]। लड़कों को पढ़ा-लिखाकर अपनी मंज़िल [illegible] कर पाये। अब मुझे डाक्टर बना कर [illegible] अपनी क्या? मेरी हैसीयत? पैसे का पैसा, शोहरत की शोहरत। हर पिता शायद यही करेगा और करता है।

मगर......? रामू घर से बाहर [illegible] न पाता था, वे उसका पीछा करते रहते हैं। [illegible] मृणालिनी को बुलाकर कह दूँ, [illegible] बढ़ी दाढ़ी को खुजलाते उन पर दूसरे विचारों के [illegible]।

'पाँच साल का साथ रहा, और कोई [illegible] की तरह आवारा बना रहना तो [illegible] नाजायज़ फ़ायदा उठाना, चोंचलेबाज़ी [illegible] ......सब करते हैं, पर मृणालिनी ने न [illegible] भी फूंक-फूंक कर पीती है। साथ रहा [illegible] प्रेम भी था, पर वह उच्छृंखल न हुआ, [illegible] कई बार चाहा, पर हमेशा अपने को [illegible] तो जाने क्या होता? क्या-क्या [illegible] लगता. पाप की भावना पैदा होती, [illegible] बरसों की याद ज़िन्दगी-भर सताती रहती।

'लेकिन अब कैसे कहा जाय?' [illegible] जहाँ-जहाँ मृणालिनी के होने की सम्भावना [illegible] बस सोचता ही रहता।

इन्हीं विचारों में वह उस दिन सो गया, सवेरे उठा तो उसको बुखार था, हल्का-सा बुखार; काफ़ी के लिये बाहर भी न गया। उसके मित्र आये, वे दवा दे गये, पर उनका कुतूहल जगा।

"भाई तुम्हें हो क्या गया है, जब से घर से आये हो, खोये-खोये-से रहते हो, काम भी नहीं करते, कमरे में पड़े रहते हो।" एक ने कहा।

"घर में कहीं झपट तो नहीं हो गई है?" दूसरे ने उत्सुकता दिखाई।

"कहीं किसी चुड़ैल से रिश्ता तो तय नहीं कर दिया गया है?" तीसरे ने ताना कसा।

"और क्या मृणालिनी से पट नहीं रही है?" एक और ने अनुमान किया। रामू ने उसकी ओर घूरा, आँखों से साफ़ था कि मृणालिनी के बारे में ही कुछ बात थी। झट उस मित्र ने तिपाई पर रखी दो-तीन दवाई की पुड़ियों को लेकर खिड़की से बाहर फेंक दिया।

"भाई, यह बुखार ऐसा है, जिसे दवाइयाँ कम नहीं करेंगी। समझे।" उस मित्र ने भभकी कसी।

जब वह अस्पताल गया तो मृणालिनी दिखाई दी तो उसने उससे कह दिया कि रामू बीमार था। मृणालिनी ने सिर हिला दिया। वह जानती थी कि रामू घर से आ गया था। आश्चर्य कर रही थी कि वह मिलने क्यों न आया था। एक-दो जगह उसे ढूँढा भी, पर वह कहीं मिला नहीं। उसके कमरे में जाने का साहस न कर पाई। लड़कों का होस्टल, न मालूम क्या हो-हल्ला करे? वह भी चिन्तित थी और अब उसकी चिंता को साहस का आधार मिला।

उसी मित्र ने रामू के पास भी जाकर कहा कि उसने मृणालिनी को उसकी बीमारी के बारे में बता दिया था। रामू जानता था कि कुछ

भी हो दुनिया लाख कायँ-कायँ करे मृणालिनी शाम तक उसे अवश्य देखने आयेगी। वह यह न चाहता था। बुखार ही तो था, वह भी हल्का-हल्का। 'मैं ही मिलूँगा।' रामू ने निश्चय कर लिया।

१०

रामू कुरता-पेन्ट पहनकर, पहाड़ी से उतरा। लम्बा कद, इकहरा वदन, गेहुआँ रंग, सुन्दर, तिकोना मुँह, चौड़ा माथा, पीछे मुड़े वाल। भरी जवानी, बुख़ार के बावजूद आकर्षक था, लम्बे-लम्बे डग भरता चला जा रहा था। मुख्य सड़क थी, बड़ा बाज़ार, बन्दरगाह वाली सड़क, कुछ दूर चला, फिर स्टेशन जाने वाली सड़क पर मुड़ा।

पास में ही एक दुमंज़िला पुराना मकान था। यहीं मृणालिनी रहती थी। होस्टल में रहना ख़र्चीला था। कम पैसों पर बहुत दिनों गुज़ारा करना था। नीचे एक बुढ़िया छोटा-मोटा होटल चलाती थी। शायद मृणालिनी की दूर की सम्बन्धी थी। ऊपर की मंज़िल पर दो-तीन कमरे थे, उनमें से एक में मृणालिनी रहती थी और दूसरे में स्वयं वह बुढ़िया। वह विचारी लाख रुपया कहाँ से दहेज देती? रामू ने सोचा, पर झट ख़याल आया, कि लाख रुपये का दहेज, इस डाक्टर स्त्री के सामने किस काम का?

वह ऊपर गया, दरवाज़ा खटखटाया। मृणालिनी ने खोला। वह बाहर जाने के लिये तैयार मालूम होती थी। वह मुसकराई, "तुम ही आ गये, मैं तुमको देखने के लिये आ रही थी, बुखार कैसा है?" उसने रामू की नब्ज़ देखनी चाही, रामू काँप रहा था। मुसकराहट का ज़वाब

मुसकराहट से भी न दे पाया।

"सुना है, तुम्हें आये हुए वहुत दिन हो गये हैं। आओ बैठो, तबीयत खराव है? लेट जाओ खाट पर।" मृणालिनी कह रही थी।

रामू कुर्सी पर बैठ गया, कभी अपने पैर पर देखता, कभी मृणालिनी के पैर पर। सिर ऊँचा करके देख भी न पाता था, मन में वहुत-सी वातें उठ रही थीं।

"तुम को हो क्या गया है? घर में सब ठीक है न? पिताजी? माताजी? भाई, भाभी?" मृणालिनी ने पूछा।

"हाँ," रामू ने सिर हिला दिया।

"तुमने यह हुलिया क्या वना रखा है? ऐसी भी कौनसी वात है, जो इतने चिंतित हो?" मृणालिनी ने पूछा।

"मृणालिनी मुझे माफ़ कर दो, माफ़ करना मुश्किल है, मेरा कसूर ही कुछ ऐसा है, पर तुम......" रामू ने हिचकते-हिचकते कहना शुरू किया।

"क्यों, क्या वात है? ऐसा कौन-सा पाप कर दिया है?" मृणालिनी की आवाज़ में उत्सुकता की अपेक्षा आश्वासन की मात्रा अधिक थी।

"मैं साहसहीन हूँ, आदर्शहीन हूँ, कमज़ोर हूँ, इतना पढ़-लिखकर भी घर का पालतू कुत्ता हूँ।

"यह क्या कह रहे हो?"

"असली वात कह नहीं पा रहा हूँ इसलिये यों वक रहा हूँ।"

"क्या पिताजी से तुमने मेरे वारे में कहा था?"

"नहीं तो, कहता भी तो कौन सुनता?"

"मैं तो पहले ही कह रही थी पिता की अनुमति के वग़ैर शादी के वारे में सोचना अच्छा नहीं।"

"मुझे माफ़ करोगी न ? पिताजी ने मेरे लिये एक और सम्बन्ध तय कर दिया है और मैं मान गया हूँ। तुम बुरा तो न मानोगी ?"

"पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्त्तव्य है, अच्छा है, मैं बुरा न मानूंगी," कहते-कहते मृणालिनी का सांस रुक-सा गया। आँसू लुढ़कने लगे। उन्होंने अपना चेहरा एक ओर मोड़ लिया। रामू हिचकियाँ भरने लगा। दिल धौंकनी-सा हो गया।

"पर हमारी मैत्री बनी रहेगी न ? बुरा तो नहीं माना न ?" उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये रामू नीचे चला गया। उसके पीछे दरवाजा बन्द हो गया।

वह सड़क पर गया ही था कि उसे लगने लगा कि उसने यह कहकर अच्छा नहीं किया। कहने के बाद इस तरह आकर अच्छा नहीं किया, लेकिन वापस भी न जा सका। दो कदम आगे बढ़ा, 'कहना ही था तो क्या इस तरह कहना था ? इतने रूखे ढंग से ? और कैसे कहता ?' वह चलता गया।

'जाने उस पर क्या बीत रही होगी, कहीं कोई मूर्खतापूर्ण कार्य तो न करेगी ? नहीं, नहीं, समझदार है, आदर्शवादी है, धुन की पक्की है, सोचेगी, डाक्टरी क्या मैं आत्महत्या करने के लिये ही पढ़ी थी ? कहेगी कि साथी का साथ न रहा, बस अब अकेला ही चलना होगा, दिल वाली है। धैर्य वाली है।'

'पिता की आज्ञा का पालन करो······पालन करो' कुछ आना-कानी करती, लड़ती-झगड़ती तो कुछ कहता भी। और क्या कहता ? मृणालिनी से जैसे आशा थी, उसने वैसा ही किया, और मैं उससे यह कहने के लिए इतने दिन घबराता रहा।'

वह पहाड़ी पर चढ़ रहा था, दम फूल-सा रहा था, पर दिल हल्का-सा हो रहा था और जब उसे लगता कि दिल हल्का हो रहा

हैं, वह अपने को कोसता, 'ऐसी भी कौन सी बात कर आये हो जो हल्कापन महसूस कर रहे हो, कायर कहीं के, एक विचारी के दिल में आस सुलगा कर, उसे बुझा कर आ रहे हो, शर्म नहीं आती, क्या करूँ ?'

उसने अपना हाथ देखा, शायद बुखार न था। चाल में तेजी आई, अपने कमरे में चला गया। तकिये पर मुँह रखकर सिसकने लगा। विचित्र अनुभव, कुछ हल्कापन, कुछ भारीपन, कहीं मन में गुदगुदी होती तो कहीं भाले चुभते। आँसू बहते जाते थे, सवेरे उठा तो तकिया गीला था।

उसके बाद जब कभी वे मिलते तो दोनों मुसकराते। मुसकराहट में कुछ कशाश, कुछ दर्द, कुछ स्नेह, कुछ भोलापन, कुछ क्षमा-भाव। दोनों न बोलते, मुसकराहट क्या थी, रामू के मन में छुरियाँ चलने लगतीं और मृणालिनी अपने मन को वश में रखने का प्रयत्न करती।

दो-तीन महीने जैसे-तैसे कट गये। वे पूरे डाक्टर बन गये, उनको प्रेक्टिस व नौकरी करने की अनुमति मिल गई।

घर जाते समय, रामू ने मृणालिनी से मिलना चाहा। मिलने भी गया, पर उसके कमरे तक न गया। वह बिना मिले ही घर चला गया। आखिरी भेंट यों हो जाती तो अच्छा होता, यह विचार उसके मन को बींधता रहा है।

घर जाने के थोड़े दिनों बाद उसकी शादी कर दी गई। उसी लड़की से। निमन्त्रण-पत्र में जब रामू ने नाम पढ़ा तो उसकी भौंहे चढ़ गईं, ...रमणायम्मा। बदसूरत लड़की का भद्दा नाम।

११

डा० पी० रामाराव एम० बी० बी० एस०……पीतल का बड़ा बोर्ड, उस पर चमकते ये अक्षर, फाटक पर लगा था। रामू का पूरा नाम यही था।

रामू के लिये नया मकान तो नहीं बनवाया गया था। बना-बनाया नया बंगला, नये शानदार महल्ले में खरीद लिया गया था। सुन्दर बागीचा, सुन्दर फ़र्नीचर, बड़ी लागत का बंगला।

अहाते में एक आम के पेड़ के नीचे कार खड़ी थी। कार के लिए अलग जगह बनवाई जा रही थी। उन दिनों कार मिलनी मुश्किल। छोटी-सी कार के लिये पूरे पन्द्रह हज़ार देने पड़े। फिर भी कार थी। नये डाक्टर की प्रेक्टिस के लिये, प्रतिष्ठा के लिए कार का होना भी आवश्यक था।

बंगले से दो-तीन फ़र्लाङ्ग दूर, मानर्स कोट की सड़क पर जनरल हास्पिटल था। सोचा गया कि यह मौके की जगह थी, जो लोग जनरल हास्पिटल तक आयेंगे, हो सकता है, डा० रामू के पास भी आयें। पाँच-दस बड़े-बड़े डाक्टर उस महल्ले में इसी वजह से थे। उनकी अच्छी प्रेक्टिस भी चल रही थी।

रामू का खयाल था कि पिताजी दहेज का पैसा ले लेंगे और उसे घर में ही रखेंगे, लेकिन उन्होंने वैसा न किया। अगर वे करना चाहते तो उसके ससुर करने भी न देते।

प्रेक्टिस के लिए जो-कुछ जरूरी था वह किया गया। यहाँ तक कि एजेण्ट भी रखे गये, पर कोई आना-जाना न लगता था। गरीब

बड़ा-सा बंगला, कार, ठाठ-वाट देखकर दूर ही से सलाम करते चले जाते, बड़े डाक्टर मालूम होते हैं, कौन देगा इनकी फ़ीस ?

और अमीर ? उनके पहले ही अपने डाक्टर थे, फिर नये डाक्टर के पास जाना भी उतनी अक्लमन्दी न समझते । डाक्टर ही सही, है तो बच्चा ही । डाक्टर के लिए अनुभव चाहिये, अमीर को अनुभव चाहिए, और बड़ी-बड़ी डिग्रियों की लम्बी कड़ी भी । रामू उनके लिए नौसिखिया था, जिसका हाथ परखा न गया था, वे भी दूर-दूर रहते ।

चार-पाँच महीने हो गये, जाने-माने पिता का लड़का, पैसे वाला । काफ़ी कुछ ढोल भी पीटे गये थे, पर कोई भी रोगी न आया । रामू का मन ऊब रहा था, वह खिझा-खिझा रहता, चिढ़ा-चिढ़ा । सिगरेट फूँकता रहता । कभी-कभी सोचता दवाइयों की दुकान ही जो रख लेता । कमाई तो होती ।

पिता के मित्र उससे प्रायः कहते, डाक्टरी और लायरी बैठते ही नहीं चल पड़ती है, बरसों जमाना पड़ता है, फिर भाग वालों का भाग जागता है, तुम तो जम सकते हो, बहुत-कुछ है और जो जम नहीं पाते वे नौकरी के पीछे मारे-मारे फिरते हैं—वे कहते जाते और रामू कुछ कहना चाहता मगर कह न पाता कि 'पिताजी से कहिये न कि मरीज़ को हुक्म देकर यहाँ लायें ।'

इस हुक्म के पीछे छोटी-सा मज़ाक था, जो उसकी भाभी अब भी याद करके ज़ोर से हँस पड़ती थी । शादी हुई 'गर्भाधान' की विधि के लिये उसका कमरा सजाया गया । फल वग़ैरह रखे गये । लड़की भी भेजी गई, लेकिन रामू न गया । भाभी ने जाने का इशारा किया— "जाओ न, यहाँ क्यों बैठे हो ?"

"पिताजी के हुक्म की इन्तज़ार में हूँ ।" रामू ने कहा । वह अपने को चिढ़ा रहा था । पिता पर ताना दे रहा था । पिता वहाँ न थे । वह

डाल दिया गया। जहाँ कभी लॉन था, वहाँ सब्जियाँ बोई जाने लगीं। अच्छी ज़मीन का कोई तो उपयोग हो, लॉन की कटी घास तो ताँगे वाले भी नहीं खरीदते। उसकी पत्नी की, और उसके पिता की नज़र में गृहस्थी चलाने का यही अर्थ था। बाहर तो डाक्टर का बोर्ड और अन्दर किसान का घर; किसान की लड़की थी, किसान के घर की तरह डाक्टर का घर चला रही थी। यह सब रामू को अखरता, पर कह नहीं पाता। कुछ कहे, और पत्नी चंग पर जा चढ़े तो और आफ़त आ पड़े। क्यों अपने हाथों बला मोल ली जाय।

कई बार घर में इस तरह की व्यवस्था की जाती कि रामू को बुरा लगता। एक दिन उसकी पत्नी ने सारा फ़र्नीचर उठाकर एक कोने में एक के ऊपर एक रख दिया और उस पर बड़ी-सी दरी डाल दी, ताकि वह सुरक्षित रहे, उस पर धूल न गिरे। रामू ने देखा उसका पारा चढ़ गया, मगर उसने धीमे से पूछा, "यह क्यों किया ?"

"कोई आता ही नहीं है, क्यों फ़र्नीचर यों बाहर खराब किया जाय, बड़ा कीमती है, इसलिए मैंने एक जगह अच्छी तरह रखवा दिया है," उसने कहा। रामू को समझ में न आया कि गुस्सा करे कि हँसे। किसान के घर वही होता जो उसने किया था, उसे क्या मालूम कि डाक्टर के घर में यह सब ठाठ-बाट न हो तो कभी आने वाले भी उलटे पाँव कर चले जाते हैं।

सब चीज़ें उसकी। उसने एक गिलास तक न खरीदा था। स्वभाव भी ऐसा कि उसी का राज था। अभी तक रामू का अपमान तो न हुआ था, पर कभी भी हो सकता था। इसकी आशंका रामू को भी थी।

रामू अपनी पत्नी से बात भी न कर सकता था, क्या बात करे ? न वह गहनों के बारे में जानता था न गाय-भैंसों के बारे में ही। उसकी

पत्नी को सिवाय इन चीज़ों के किसी और चीज में ख़ास दिलचस्
न थी।

एक दिन उसने सिनेमा ले जाने के लिये कहा। रानू ने आनाका
की। यद्यपि वह प्रायः रोज स्वयं जाता। उसने कहा कि "अपने पिता
के साथ जाओ।"

"पिताजी के साथ ही जाना था तो आपसे क्यों कहती?"

रानू कुछ न बोला।

"शायद आपको—" वह कहती-कहती रो पड़ी। ऐसी ही सर्
थी तो कम उम्र की लड़की ही, लड़कियों को शौक, वह भी चाहती थ
कि लोग देखें कि वह एक डाक्टर की पत्नी थी, लेकिन रानू न चाह
था कि कोई उसको पत्नी के साथ देखे। वह यह कह कर बाद में पछ
ताता था—"जब मैं उसके साथ गृहस्थी कर सकता हूँ, क्या उस
सिनेमा नहीं ले जा सकता? उसे न भी ले जाऊँ तो क्या सब नहीं
जानते हैं कि वह मेरी पत्नी है? अच्छा नहीं किया।'

आये दिन ऐसी घटनायें होतीं, उसका व्यवहार रूखा था। कड़व
—और उसकी पत्नी उन दिनों यही सोचती कि पति डाक्टर हैं, ब
आदमी हैं, शायद बड़े आदमियों का सलूक इसी प्रकार होता है।

कुछ पुरानी बातें याद कर, कुछ आज की विवशतायें देख, कुछ
परिवार की निराशा का अनुमान करके, रानू हमेशा चिन्तित रहता
दुःखी। उखड़ा-सा।

१२

बहुत से हवाई किले बनाये थे, ख्वाब देखे थे, वे सब धराशायी हो गये। सोचा था कि जत्थे-के-जत्थे मरीज़ आयेंगे। हम उनकी चिकित्सा करेंगे, पैसे की फ़िक्र तक न करेंगे। यही सन्तोष कर लेंगे हमने सैकड़ों का उपकार किया। और यहाँ ? एक भी मरीज़ न था। रामू को पसन्द न था कि ढोल पीट कर, एजेन्टों द्वारा रोगियों को हाँक कर लाया जाये ···यह नियम-विरुद्ध तो था ही और चिकित्सक की स्वाभाविक नैतिकता के विरुद्ध भी था।

दिन बीतते जाते थे, उसके वैवाहिक जीवन में और बल पड़ जाते थे। वह एक ऐसी स्त्री के साथ रह रहा था, जिसके साथ वह रहना न चाहता था। रह न पाता था। अपनी पत्नी को देखता और मृणालिनी की कल्पना करने लगता; फिर उसकी कल्पना भी न करना चाहता।

वह न समझ पाता था कि उसके घर वालों ने उससे क्यों किनारा कर रखा था। उन्हीं के हुक्म पर तो मैंने यह शादी की। शादी के बाद क्या उनकी ज़िम्मेदारी खत्म हो जाती है, पिता भी नहीं आते, पूछ-ताछ करते भी नहीं मालूम होते, आखिर क्यों ? इसलिये कि पैसा उनके हाथ नहीं आया ? क्या कभी पैसे की उन्होंने आशा की थी ? क्या इसलिये कि मेरी प्रेक्टिस नहीं चल रही है ? क्या इसलिये कि मेरे ससुर ने उन के कान भर दिये होंगे कि मैं उनकी लड़की के साथ ठीक व्यवहार नहीं कर रहा हूँ ? क्या इसलिये कि मेरा अपना घर बसा दिया गया है ? माँ आई और इस तरह घर देख गई जैसे यह उसका महकमा न हो। भाइयों की बात समझ सकता हूँ, सोचते होंगे डाक्टर हो गया हूँ, इस

लिए सिर चढ़ गया होगा, पास जायेंगे तो जाने क्या करे, क्या कहे, डाह हो सकता है, मैं ग़लत हूँ, पर मुझे ग़लत सोचने का हर मौका दिया जा रहा है, कारण कुछ भी हो, यह बात सही है कि मैं पत्नी से दूर हूँ, भाई-बन्धुओं से दूर हूँ, मित्रों के पास जाते शर्माता हूँ, मित्रों को बुलाते शर्माता हूँ, अगर इसी तरह मक्खी मारता रहा तो बाहर बोर्ड लगा रह जायेगा और मैं सब डाक्टरी भूल जाऊँगा।

इसका एक ही हल प्रेक्टिस तो है नहीं। आजकल केवल एम० बी० बी० एस० को पूछता कौन है जब तक साथ में एफ० आर० सी० एस० ए० नहीं जुड़ता है ? अगर मैं इंगलैंड पढ़ने चला गया तो इनसे पीछा छूटेगा और आगे कुछ पढ़-लिख जाऊँगा, 'यही एक रास्ता है,' रामू ने निश्चय किया।

उसने पिता की सलाह माँगी, उन्होंने कहा, "पढ़ना अच्छा है, पर अब तो तुम्हारी शादी हो गई है। घर-बार भी चल पड़ा है, ससुर से पूछा ?"

"जी नहीं।"

"मुझे कोई ऐतराज़ नहीं, मगर अब उनसे भी पूछना चाहिए और···"

रामू जान सकता था कि पिताजी क्या कहने जा रहे थे, इसलिये उसने बातों का रुख बदलते हुए कहा, "यहाँ प्रेक्टिस भी नहीं है, और अधिक पढ़ूँगा तो अधिक प्रैक्टिस की सम्भावना है।"

"हूँ, मगर इतनी जल्दी तो बड़े-बड़े डाक्टरों की भी नहीं चलती है, समय लगता है, सब्र करो, हम कोशिश कर रहे हैं।"

"मैं चाहता था कि आप ससुर से कह देखें।"

"मैं कैसे कहूँ ? वे तो इस तरफ़ आते ही नहीं, तुम्हारे यहाँ हैं न ?"

रामू कुछ न बोल सका, उसको इसकी जानकारी न थी। वह बिना कुछ कहे माँ के पास गया, माँ से मिलकर भाभी से मिला। इधर-उधर

की गप्प में उसे पता लगा कि उससे ससुर इसलिये नाराज़ थे कि उसके पिता बड़े रईस थे, मगर उसके घर के खर्च के लिये कुछ न भेजते थे। सारा खर्च उन्हें ही उठाना पड़ता था। यह उनको अखरता था, इसलिये वे नाराज थे। रामू यह जान कर दंग रह गया। किसने इनसे ख़र्च करने के लिये कहा, और किसने इनसे यों रोने के लिये कहा? पर उसने कहा नहीं। यह कहने का मौका न था। वह समझदार था, ज़ानता था कि उसकी आजीविका की कुंजी उनके हाथ में थी।

भाभी ने जाते समय कहा, "रामू शादी के पहले की बातें कुछ होती हैं, और शादी के बाद कुछ और। एक लड़की घर में क्या आती है कि घर वाले ही बदल जाते हैं, खुद शादी करने वाला भी बदल जाता है।" रामू न जान सका कि भाभी का मतलब क्या था। उसने सोचा कि उसके घर न आने के कारण भाभी ताना कस रही थी।

खैर—

दो-तीन दिन बाद, उसके ससुर आये। साथ दो भैंसे लाये, भैंसे पीछे बाँध दी गई थी। रामू को यह पसन्द न आया कि घर में यों भैंसे बंधें। एक का होना समझा जा सकता है, पर छः की क्या ज़रूरत थी? वह ससुर से पूछ बैठा, "भैंसें किस लिए?"

"बेटा, घर के लिए पूरे पाँच सौ रुपये माहवार खर्च हो रहा है, नकद, भैंसे रहेंगी, दूध निकाला जाएगा, नौकर हैं ही कुछ आमदनी होगी, खर्च निकल जायेगा।"

रामू और क्या कहता, उसे बहुत चुभी यह बात। ग्लानि हुई। मन-ही-मन रोया, लेकिन बाहर कुछ भी न कह पाया। उस हालत में वह विदेश जाने की बात भी न कह सकता था, कहता तो जाने क्या बवण्डर उठाया जाता। पर उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि हो सका तो वह उस घर में नहीं रहेगा।

दो-तीन दिन बाद, सब्जियों का बड़ा-सा गट्ठर नौकर लाया, कहीं सब्ज़ियों का व्यापार भी तो न होगा ? पर पूछने पर मालूम हुआ कि वे घर के लिए ही थीं। बड़ी मेहरबानी।

खाना खाकर, शाम को जब वे सिगार सुलगा कर पिछवाड़े में बैठे थे तो रामू ने कहा, "मैं विदेश जाना चाहता हूँ और पढ़ने के लिए।"

"यह तो शादी की शर्तों में न थी।" उसके ससुर तुरत बोल उठे। जैसे रामू किसी शर्त को लेकर तकाज़ा कर रहा हो।

"नहीं तो, और पढ़ने से और प्रेक्टिस होगी।

"इतना पढ़ा, कुछ प्रेक्टिस नहीं, और पढ़ोगे तो क्या प्रेक्टिस होगी ? प्रेक्टिस होनी होगी तो बिना पढ़े भी होगी।"

"हूँ," रामू सोच न सका कि क्या जवाब दे।"

इतने में उसके ससुर बोले, "तुम विदेश चले जाओगे तो लड़की का क्या होगा ? वह अकेली यहाँ कैसे रहेगी ? उसे साथ तुम ले नहीं जाओगे ? अभी पाँच सौ रुपया खर्च हो रहा है, विदेश जाओगे, तो एक हजार का खर्च, और आने-जाने का खर्च अलग, शादी में इतना खर्च हुआ कि—खैर, खर्च न होता तो पूरे बीस एकड़ खरीदता। नहीं, मैं नहीं जाने दूँगा, यह बीमारी न पालो, तुम गये और" हाँ, हाँ, कितने ही हैं, विदेश जाते हैं, और वहाँ से छोकरी भी पकड़ ले आते हैं, तुमने अपने पिताजी से पूछा ?"

"जी,"

"उनका क्या ख़याल है ?"

"उनको कोई आपत्ति नहीं अगर आपको कोई आपत्ति न हो।"

"आपत्ति क्यों होगी, पैसा तो हमारा खर्च होगा न ?"

"हूँ," रामू उठकर चल दिया। उस आदमी से झगड़ा करके भी क्या पता ? झुंझला उठा। उसके ससुर कड़वे ही सही, पर स्पष्ट वक्ता थे, इतने स्पष्ट वक्ता कि वे अक्लमन्द भी मालूम होते थे; इतने अनाड़ी

कि यह भी न सोच पाते थे कि सुनने वालों पर उनकी कड़वी बातों का क्या असर होता था।

रामू उस दिन कुछ सोच न सका, सो न सका, जल-सा उठा।

१३

अगले दिन वह घर में न रह सका, ससुर को देखता तो गुस्सा आता, पत्नी को देखता तो खीझता, कार लेकर निकल पड़ा। कहाँ जाता, काकिनाड़ा का चप्पा-चप्पा जानता था। उसी दिन सामर्ल कोट का नाम याद आते ही विच्छू काटते-से लगते थे; इसलिये सामर्ल कोट की सड़क पर भी न जा पाता था।

आखिर वह येनाम की ओर चल दिया। अच्छी सड़क। समुद्र का किनारा। कभी यह फ्रेन्च इलाका था। रास्ते में उसके भाई का ईंटों का भट्टा था। भट्टा आया, भाई से बहुत दिन हुए थे न मिला था, मिलना चाहता था, पर भट्टा दिखाई दिया तो न रुका। सीधे चला गया।

शाम तक वहीं मटरगश्ती करता रहा। समुद्र के किनारे बैठा-बैठा सिगरेट फूँकता रहा। कोई उसे न जानता था। कारवाला था, मछियारे कार देखने जमा हुए, उसे देखा। रामू को वह मटरगश्ती करता देख जाने क्या सोचते होंगे। वह लजाया, वह भी अधिक देर न रह सका।

लोग प्रायः यह नहीं समझते कि जिन चीज़ों से वे भागना चाहते हैं, और जब वे भागने लगते हैं तो वे ही चीज़ें दुगने बल से उनका पीछा

करती है, भले ही वे चीज़ें प्रत्यक्ष न हों। मृणालिनी का अनुभव कुछ ऐसा था, उसके घर, घरवाली और ससुर का अनुभव भी कुछ ऐसा ही था। वह येनाम से वापस चला, काकिनाड़ा पहुँचा तो अभी शाम न हुई थी, घर इतनी जल्दी न पहुँचना चाहता था।

कार अस्पताल की ओर मोड़ी, वही रोज़मर्रे की भीड़, वहाँ भी न रह सका। अस्पताल के सामने वाली सड़क पर गया, कुछ दूरी पर बड़ी इमारत बन रही थी और पास एक छोटी जगह बोर्ड लटका था, 'डा० रक्षित, एल० आइ० एम० रजिस्टर्ड प्रेक्टिशनर, उसके नीचे था डा० लीला रक्षित।'

रामू उनके नाम से परिचित था। उनकी प्रेक्टिस की भी उसे खबर थी। पति-पत्नी दोनों डाक्टर—डा० रामाराव, और डा० मृणालिनी राव······वह तो टूटा सपना है, क्यों याद करते हो? वह आगे बढ़ा।

'अब इतना बड़ा अस्पताल बन रहा है, उन्हीं का है, जब आये थे पास सिवाय पाँच सौ-छः सौ के कुछ न था। यह छोटा-सा किराये का मकान लिया, अब उनका अपना है, दोनों मेहनत करते हैं। ग़रीब मरीज़ से फ़ीस भी नहीं माँगते, जो जो-कुछ दे जाता है ले लेते हैं। इतना मिला कि अब बड़ी इमारत बना रहे हैं।

'एल० आइ० एम० हैं, मैं एम० बी० बी० एस०, डिग्री बड़ी नहीं है, पर अनुभव बहुत है, छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज करने के लिये बड़ी डिग्रियों की क्या जरूरत है? बड़ी-बड़ी बीमारियों के लिये बड़े-बड़े डाक्टर हैं ही, सेवा-भाव है, स्नेहमय स्वभाव, जो एक बार आता बार-बार आता। प्रेक्टिस चल पड़ी, अब लखपति भी उनके मुकाबले में क्या टिकेगा? काफ़ी रुपया बनाया, पर अब भी उसी तरह प्रेक्टिस करते हैं, जैसे तब करते थे, लोग जनरल हास्पिटल में जाते हिचकते हैं, दुनिया-भर के क़ायदे भरो, फिर भी ऐसे देखे जाओ, जैसे टुट-पूँजियों

के परीक्षण के लिये परीक्षण की नली हों। लोग सीधे यहीं चले आते हैं, दिन-रात व्यस्त रहते हैं।

'यहाँ मेरी जाति के लोग हैं, उन्हीं का बोलबाला है। जाति के नाम पर काफ़ी कुछ होता है, मेरी जाति वाले भी इन्हीं के पास जाते हैं, क्यों न जायें; होने को तो ये आन्ध्र भी नहीं हैं, पत्नी आन्ध्र की ईसाई है, और पति बंगाली, मगर फिर भी प्रेक्टिस बढ़ती ही जाती है।

'यह देश ग़रीब है, मेरी 'प्रतिष्टा' के लिये पिताजी और ससुर ने मेरी कनसल्टेशन फ़ीस भी नियत कर दी है, पन्द्रह रुपये; दवा का खर्च अलग, कौन आयेगा ? अमीर भी आते डरेंगे फिर दुनिया-भर के खर्च, कम्पाउन्डर, नर्स, सब बेकार बैठे हैं, घर जाते ही, मेरी बदनामी करते होंगे।'

रामू चक्कर काटता चला जा रहा था, जैसे कोई मशीन हो, वही आसपास की सड़कों से घूमता-घामता दो-तीन बार डा० रक्षित के अस्पताल के सामने से गुज़रा, फिर उसे यकायक ख़याल आया कि इस तरह चक्कर काटकर वह ग़लती कर रहा था ·····इस देश में प्रेक्टिस करने का यही तरीका है, मैं जिस तरह प्रेक्टिस करना चाहता हूँ, उस तरह की तो नहीं कर पाता हूँ, वहाँ भी पिता का दख़ल, ससुर का हस्तक्षेप।

वह पुल की ओर चल दिया, पुल पार कर रहा था कि उसको इंजीनियर और उसकी पत्नी याद आये—शायद उसकी पत्नी भी इंजीनियर हो, शायद न हो, यही काफ़ी है कि उसको उसकी सहानुभूति मिले, सहयोग मिले, डा० रक्षित और उनकी पत्नी; और मृणालिनी जाने कहाँ होगा, अब अगर मैं उसे लाना भी चाहूँ तो शायद न आये, क्यों आयेगी ? एक बार धोखे में पड़ी, क्या यह काफ़ी नहीं है·····नहीं-कहीं, मैं ही दोषी हूँ, मैं भी कितना असमर्थ हूँ, मैं, निरा नालायक।

मानो कार अपने-आप गणपति शास्त्री के घर पर रुकी । कभी वे सहपाठी थे, वह स्कूल फ़ाइनेल भी पास न हुआ था । आलसी, आवारा-गर्द, अब मालामाल था, ताऊ मरे । कोई वारिस न था, सारा व्यापार उसको मिला, आयात-निर्यात का । चर्च के सामने बड़ा बंगला था । शानदार, उसके पिता के घर के समीप ही ।

रामू कार से उतरकर गणपति शास्त्री की बैठक में गया, तिपाई पर ताश के पत्ते थे, और पास दो लड़कियाँ थीं, एंगलो-इन्डियन सी, लेकिन हिन्दुस्तानी लिबास में । शास्त्री रामू को देखकर चौंका नहीं, उठ कर रामू को उसने गले लगा लिया—"अरे, आज रास्ता भटक गये, जो इधर चले आये ? ठीक हो न ?"

"हूँ," रामू खड़ा रहा । वे दोनों लड़कियाँ उसको देखकर मुसकरा रही थीं, वह स्तब्ध-सा था ।

"अरे यार, बैठो भी । शेला, तुम हमारे बग़ल में आओ ।" शास्त्री ने कहा तो रामू को बैठना पड़ा । "अरे यार, तुम करते क्या हो, कहीं दिखाई नहीं देते, शादी का बुख़ार, नहीं गर्मी, तो अब उतर गई होगी ।"

"हूँ," रामू शास्त्री के बारे में सोच रहा था । खूब पैसा अप्रयत्न मिला था, मज़े उड़ा रहा था । पैसे वाले इसी तरह ही तो मज़ा करते हैं ।

उसे वह शास्त्री याद आया, पन्द्रह वर्ष पहले, मटियाली-सी घुटनों तक धोती, माथे पर टीका, बड़ी-सी चोटी, ग़रीबी, ख़ैर । वह अधिक सोच न पाया । शास्त्री कह रहा था, "और पैसे के लिए प्रेक्टिस करते हैं, तुम्हें बिना प्रेक्टिस के ही पैसे मिल गये । मज़ा करो, प्रेक्टिस हो न हो, कम-से-कम मज़ा तो करो, फिर," अभी वह पूरी तरह कह भी न पाया था कि दोनों लड़कियाँ हँसकर उसकी दाद देने लगीं । शास्त्री हँस पड़ा । रामू को भी लाचार मुसकराना पड़ा ।

"अरे हमने एक क्लब चलाई है, यहाँ कोई ठीक क्लब भी तो नहीं है। हमारी क्लब पाँच बजे के बाद ही शुरू होती है, पाँच बजे तक दफ़्तर रहता है। अभी अलग मकान नहीं मिला है, तुम भी आ जाया करो और एक-दो डाक्टर हैं, सरकारी अफ़सर हैं, बड़े लोग हैं, चर्च के परली तरफ़ है, कल आ जाना, मैं ले जाऊँगा।"

"तुम व्यस्त मालूम होते हो" रामू ने दोनों लड़कियों को देखते हुए शास्त्री को सम्बोधित किया। मुसकराता-मुसकराता बाहर चला गया, अन्धेरा हो चुका था, बत्तियाँ जला दी गई थीं, काफ़ी थक भी गया था, वहां घर इस हालत में पहुंचा, जैसे नशे में हो।

१४

रामू अगले दिन गणपति शास्त्री के यहाँ न गया; उसको वह जीवन पसन्द न था। पिता की सख़्त निगरानी में वह पला था। पैसा था, पर उसने नियन्त्रण के नाम पर ग़रीबी ही देखी थी। पिता ही उसके आदर्श थे और गणपति शास्त्री के जीवन में और उनके जीवन में ज़मीन-आसमान का अन्तर था।

गणपति शास्त्री को देखकर उसे रंज हुआ और चौबीस घंटों में एक-दो बार ऐसे भी मौके आये जब उसे ईर्ष्या हुई, उसको स्वयं आश्चर्य हुआ था।

उसमें एक ही ऐब था, वह भी सिगरेट फूँकने का। कॉलेज में यह ऐब सीखा था, दवाइयों की बू पहले पसन्द न थी, उसकी बू हटाने के लिये किसी मित्र ने सिगरेट पीने की सलाह दी, पीने लगा; फिर पीने

की आदत हो गई। अन्यथा उसका जीवन, निर्दुष्ट, स्वच्छ, संयमित था।

घर से ऊबा हुआ था, जीवन से ऊबा था, जीना न चाहता था, मरना भी न चाहता था। अपने को बँधा पाता था, समय-समय पर गणपति शास्त्री के ये वाक्य बुलाते-से लगते, "पैसा है, जवानी जाया न करो।" वह आँखें मींच लेता।

वह अपने कमरे में बैठा था, मेज़ खाली थी। पेपर कटर-मात्र रह गया था, अलमारी जिसमें सर्जिकल उपकरण रखे थे, बन्द थी। ताला लगा दिया गया था, सामने कुर्सी भी न थी। कीमती कुर्सी कहीं सुरक्षित रख दी गई थी। जो चीज़ें एक समय बहुत ही चाव से देख-दाख कर ख़रीदी गई थीं, अब कहाँ रख दी गई थीं, रामू कुछ कह भी न पता था।

पेपर-कटर हाथ में था, होंठों में सिगरेट। उसे अचानक सालों पहले की बात याद आई, तभी मेडिकल कॉलेज में भरती हुआ था। मेंढ़क दिया गया, काटने के लिए कहा गया, काटा और कै करता-करता कमरे से बाहर चला गया। एक दिन मुर्दे की टाँग काटने के लिए कहा गया, वह मूर्च्छित होते-होते बचा, प्रोफ़ेसर ने कहा, "अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो तुम मेडिकल कोलेज में नहीं पढ़ सकते।"

'अच्छा होता, वही हाल रहता, न पढ़ता और न यह नौबत ही आती। कितनी ही आशायें उफनीं, योजनायें बनीं, और अब ? काँटों में हूँ, तरह-तरह की जंजीरों से बंधा हूँ, डाक्टर होकर मैंने क्या पाया ? भाई-बन्धुओं से भी दूर हो गया, अकेला हूँ और स्थिर-सा हूँ, सड़ रहा हूँ, क्या फ़ायदा ?

शायद यह आधुनिक शिक्षा का प्रभाव है, बदलती दुनिया का असर है कि नवयुवक में स्वतन्त्र होने की इच्छा तो होती है, पर स्वतन्त्र होने की

शक्ति नहीं आ पाती, पढ़-लिखकर उसमें कुछ ऐसे मूल्य आ जाते हैं कि विना धन के वे शोभा नहीं देते और जव धन आता है तो विकृत मूल्य वने रहते हैं, और आदर्श कोहरे की तरह काफ़ूर हो जाते हैं। रामू ने यकायक पेपर-कटर लेकर अलमारी के ताले पर फेंका, ताला ठनठनाया, पर टूटा नहीं।

रामू ने मुँह मोड़ लिया। काम न था, इसलिए पुरानी वातों पर सोचता···जुगाली-सी करता रहा—मेरा जीवन भी खूव है, पहले जो-कुछ पिताजी ने कहा, किया। वे मेरे लिए सोचते थे, मैं करता था। फिर वाल्टेयर गया, कुछ आवारागर्दी की। जीवन में मृणालिनी आई, उसका असर पड़ा। उसने जो कहा, मैंने किया, फिर अपने ही हाथों-पैरों पर कुल्हाड़ी मारी, खुद घायल हुआ, और उसे भी···जाने क्या वीत रही होगी उस पर? भगवान् भला करें उसका, और अव ससुर हैं, वे-पढ़े, कंजूस, पैसे के मतवाले, जो कहते हैं, करना पड़ता है, मैं डाक्टर? डाक्टरी किस काम की अगर कोई गँवार, हाँ-हाँ गँवार ही तो है, नकेल पकड़ कर लाये। विदेश भी न जाने दिया, नौकरी न करने देंगे, तवादला होगा, लड़की साथ जायेगी, घर से दूर, अकेला, प्रेक्टिस भी न चलेगी···डा० रक्षित···यह भगवान् शायद किसी-किसी को भाग्य इसीलिए देते हैं, ताकि दूसरे देख कर जलें, नहीं, मैं इस तरह वेकार न रहूँगा···गणपति शास्त्री के दो-तीन कारोवार हैं, दफ़्तर है, उनके लिए डाक्टर की ज़रूरत होगी, एक-एक जगह से सौ सौ भी मिल गये, पूरे तीन सौ, पिताजी का कारखाना है, वहाँ भी डाक्टर की ज़रूरत होगी, यह वात मुझे पहले क्यों नहीं सूझी? किसी ने सुझाई क्यों नहीं? पिताजी से मिलूँगा।

वह उठा, कार लेकर अपने पिता के घर की ओर चला, पर मन में वातें खौलती जाती थीं। मेरी कोई खास वात नहीं है, हमारे देश में जहाँ

मित्र हैं, अच्छे डाक्टर हैं, उनको निकाल कर तुम्हें कैसे रखूँ, यह ठीक न होगा, फ़िक्र न करो।"

रामू पर पहाड़-सा गिर गया, मानों पहले प्रयत्न में ही गढ़े में जा गिरा हो। सिर चकरा गया।

"फिर घर से ही प्रेक्टिस शुरू करने के लिए किसने कहा है? तुम्हारे ससुर ने? अगर होशियार हो तो और जगह देखो, पर घर में काम हो, और बेवकूफ़ लड़का भी हो तो उसे भी मिल जाता है, इसमें कौन सी बड़ी बात है।"

और कुछ?

"कुछ नहीं,"

उसके पिता उठकर मुनीम के पास गये और वह दुमंज़िले पर माँ से मिलने गया। उस हालत में वह बात क्या कर सकता था, नमस्कार करके चला आया। कार में घर की ओर गया, 'आखिर यह सब क्यों? मैंने मृणालिनी के साथ ठीक व्यवहार नहीं किया। शायद उसका शाप है। मुझे अच्छे पिता मिले हैं, अगर घरवाले मदद न करेंगे तो क्या बाहर वाले करेंगे? देखें, क्या होता है?'

वह घर गया, अपनी कुर्सी पर बैठा। काकिनाड़ा में हवा चौकड़ी भरती चलती है, नहीं तो घुटी-घुटी। पसीना-ही-पसीना, तपन, पंखा चलाने के लिये उठा। पंखा न था। निकाल लिया गया था। वह आगबबूला हो उठा, वचत का मतलब वह न समझ सका। पत्नी से पूछा, "पंखा कहाँ है?"

"पिताजी ने निकलवा दिया है।"

"क्यों?"

"बैठक में है ही, फिर कमरे में इसकी क्या जरूरत है? फिजूल बिजली का ख़र्च।"

'दुनिया क्या कहेगी ? मृणालिनी क्या कहेगी ? धूम-धाम से शादी की और अब ? मगर मैं यहाँ न रहूँगा।' रामू उठकर चल दिया। कार में डा० रक्षित के घर के सामने से गया, वहाँ तब भी भीड़ थी। एक बजने जा रहा था। बिचारे सवेरे से काम कर रहे होंगे और तब भी रोगी बाकी रह गए थे, दिन-रात उनका अस्पताल खुला रहता। पति-पत्नी बारी-बारी से काम करते, एक कोई नया डाक्टर उनकी मदद करने भी आ गया था।

'क्यों नहीं, ये म्युनिसिपेलिटी वाले या और कोई, कोई ऐसी जगह नहीं खोलते जहाँ हर डाक्टर आकर अपना समय दे, रोगी देखे और सब मुफ्त, उपकार का काम। पर ये तो मेम्बरी के फेर में ही पैंतरेबाज़ी करते रहेंगे। इनको क्या पड़ी है,' वह सोचता-सोचता काफ़ी हाउस में चला गया। यही एक जगह थी, जहाँ वह कभी-कभी खाने-पीने के लिये आ जाता था।

'कई की मेरी तरह शादी हुई होगी, पर कम पर ही वह गुज़री होगी जो मुझ पर गुज़र रही है। हूँ...'सोचते-सोचते उसने खाना निगल लिया, ज़्यादह देर वहाँ भी न बैठ सका।

वह गणपति शास्त्री के दफ़्तर गया। सजा-बजा कमरा, कितने ही काम करने वाले। वे बैठे-बैठे कुछ कागजात देख रहे थे, दीवार पर बड़े-बड़े जहाज़ों के चित्र टँगे थे। मेज़ पर रंग-बिरंगे काग़ज़ों के कितने ही फार्म पड़े हुए थे। व्यस्त थे।

रामू कमरे में घुसा। कुर्सी परे हटाकर बैठ गया।

"क्यों भाई, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, तुम बहुत व्यस्त मालूम होते हो।"

"फिर भी कहो, तुम्हारे लिये तो हमेशा फ़ुर्सत है।"

"तुम्हारे इतने कारखाने हैं...... ।"

"इतने कहाँ है, एक ही है, सिगार फैक्टरी। बीस-एक आदमी काम करते हैं। उनके लिए डाक्टर है, डाक्टर ज़रूर है, एक एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट का, दूसरा शिपिंग एजेन्सी, का, क्लर्कों के लिये मेडिकल एड लेनी कानून लाज़मी नहीं है।" शास्त्री सर्राटे से कह गया। रामू दंग था। जो वह कहना चाहता था, उसने अनुमान कर लिया था और समाधान भी दे दिया था।

"यही काम था न, क्यों?"

"हाँ, हाँ।"

"मगर फ़िक्र न करो, शाम को क्लब में मिलना। सिप्ले कम्पनी का मैनेजर आता है, उसका बड़ा कारख़ाना है, पैसे वाली कम्पनी है, कुछ इन्तज़ाम हो जायेगा।" शास्त्री ने कहा और काग़ज़ों को देखने लगा। दफ़्तर था। गप्प मारने की मूड में न रामू था, न शास्त्री ही।

उसके बाद दो-तीन घंटे इधर-उधर घूम-घाम कर काट दिये। दाक्षाराम तक कार में चला गया, सिर्फ़ समय काटने के लिये। दाक्षाराम का मन्दिर प्रसिद्ध है, पर न उसे मन्दिरों में श्रद्धा थी, न मन्दिरों के भगवानों में भक्ति ही। सड़क अच्छी थी, तेज़ ड्राइव का मज़ा लेने चला गया।

वापस आया तो शास्त्री की 'क्लब' में गया। क्लब का कोई नाम न था। पुरानी बिल्डिग, डचों के ज़माने की ऊँची-ऊँची दीवारें, बड़े-बड़े कमरे, खुली जगह। शास्त्री के नाऊ ने मरते-मरते आयात-निर्यात के व्यापार के लिये यह बिल्डिग ख़रीदी थी। पुरानी ही सही, पर बिल्डिग शानदार थी।

आम के पेड़ के नीचे, पाँच-दस कुर्सियाँ थीं, तिपाइयों पर शराब की बोतलें, कुर्सियों के पास चार-पाँच कारें, फाटक पर गुरखा। एक ओर तीन-चार एँग्लो इण्डियन लड़कियाँ। रामू सीधे उनके पास चला

गया—यही क्लब थी। उसे न रोका गया, श्री शास्त्री फाटक पर पहले ही हिदायत करते गये थे। वह चौंका।

"ये हैं, डा० पी० रामाराव;" शास्त्री ने उसका परिचय कराया। उनमें एक वकील थे, जिनको पिता की वकालत विरासत में मिली थी, बहुत पैसा मिला था। अब भी प्रेक्टिस थी, पर खास बड़ी नहीं······ श्री पुरुषोत्तम।

दूसरे थे, काकिनाड़ा के सर्किल इंस्पेक्टर, वरदी में न थे। श्री रंगाराव। उम्र पचास के करीब।

तीसरे भी वकील थे, जो रामू की तरह धनी घर के दामाद थे। प्रेक्टिस न थी। मजा कर रहे थे। उम्र भी तीस-पेंतीस की थी······ श्री सत्यनारायण।

चौथे व्यापारी थे, कई कम्पनियों के एजेन्ट थे, दीवालिये हो रहे थे। पर ऐश करते न अघाते थे······श्री सुब्रह्मण्यं।

पाँचवे जनरल हास्पिटल के डाक्टर, मोटे, तोन्दू, चश्मा लगाये, काले-काले······डा० वीरा स्वामी पिल्लई।

छठे श्री राममूर्ति, सिप्ले कम्पनी के मैनेजर, गम्भीर-से व्यक्ति, बड़ी-बड़ी आँखें, बड़ी-बड़ी मूँछें, भयावनी शक्ल।

और सातवें, श्री गणपति शास्त्री।

लड़कियों का परिचय न कराया गया। रामू को डा० पिल्लई के पास बिठाया गया। "आपको शौक है क्या ?" उन्होंने शराब दिखाते हुए पूछा।

"जी नहीं।"

"अच्छा है, यह काम ही ऐसा है कि बिना पिये चैन नहीं मिलता, आप भी तो डाक्टर हैं ?"

"जी,"

"मेरा वस चले तो मैं डा० रक्षित को सर बना दूँ, खैर, अब तो सर नहीं बनाये जाते हैं, 'भारत रत्न,' बना दूँ। मरीज उसके यहाँ चले आते हैं और हमें थोड़ी फुरसत मिल जाती है—राहत।" उन्होंने शराब की चुसकी ली। ज़ोर से हँस पड़े।

"क्यों मूर्ति साहब, आपके कारखाने में कोई डाक्टर है कि नहीं?" गणपति शास्त्री ने पूछा।

"है भाई, है न पार्थ सारथी? हमारा भतीजा, मैं उसकी नियुक्ति कर चुका हूँ, क्यों?"

"अपने एक साहब को कुछ ऐसा काम चाहिए।" शास्त्री ने कहा। राममूर्ति हँस पड़े।

"आप क्यों किसी गरीब की रोटी खोसते हैं, आपको तो, सुना है, बहुत-कुछ मिला है, शास्त्री कह रहे थे। आप क्यों हमारी तरह मरते-खपते हैं? आप तो सत्यनारायण की तरह मजा उड़ाइये ····"

रामू की नज़र भी सत्यनारायण की ओर गई। वे सिगरेट के बादल उड़ा रहे थे। उसने भी सिगरेट सुलगा ली।

"अरे प्रेक्टिस की फ़िक्र न करो, चाहोगे तो हम आपके पास कुछ मरीज़ भेज देंगे," डा० पिल्लई ने कहा, "हम तो यही चाहते हैं कि डा० रक्षित से और डाक्टर आयें, और हमारा काम हल्का हो। शाम का वक्त है, मज़ा उड़ाइये। डाक्टर साहब, बहुत मँहगी चीज़ है, मुश्किल से मिलती है," उन्होंने रामू की ओर बोतल और गिलास बढ़ाया।

"मैं पीता नहीं हूँ······"

"आप ज़िन्दगी में बहुत बढ़िया चीज़ से परहेज कर रहे हैं। आह······" होंठ चाटते हुए, डा० पिल्लई ने पेट में गिलास-भर शराब उँडेल दी।

"तो लेमनेड लाना," शास्त्री ने हाथ से इशारा किया।

एक सजी-धजी लड़की मटकती-मटकती, कमरिया हिलाती-हिलाती, उसके पास आई। उसका हाथ पकड़कर उसमें गिलास थमा कर पास ही बैठ गई। रामू की शक्ल-सूरत खूब सुन्दर, तिस पर जवानी······वह ध्यान से देखने लगी।

काम न बना, पर वहाँ से वह जा न पाया। उनकी गप्पों में मशगूल हो गया। गप्पों में उसे एक तरह का आनन्द मिला। मनोरंजन का यह नया मार्ग था, जिससे वह तब तक अपरिचित था।

१६

पी उन लोगों ने थी और मानो नशा रामू पर था। सवेरे आठ बजे वह आँखे मलता उठा। तब दूध देने वाले होटलों में दूध देकर वापिस आ चुके थे। वराण्डे में थे और उस के ससुर उनसे जोर-जोर से बातें कर रहे थे। रामू ने उनको देखा। वह फिर लेट गया।

जब वह रात को देरी से लौटा तो पत्नी सो चुकी थी, ससुर बराण्डे में खम्भे के सहारे बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। रामू दिन का थका-माँदा, लड़खड़ाता-सा उनके सामने से अपने कमरे में गया। बूढ़ा खूसट, जाने उसने क्या-क्या अनुमान किये होगें ?

दिन-भर घर में न रहा, खाया भी नहीं, पर इन लोगों को कोई फ़िक्र नहीं। पत्नी कमरे में आई और इस तरह देख गई जैसे नांद में अभी कुट्टी डालनी हो, गँवार, तिस पर रईसी का घमड।

ये जो न करें सो कम। पंखा बेच दिया, अब कार बेच देंगे, कार मिल नहीं रही है, सेकेण्ड हेण्ड कार भी बड़े-बड़े दामों पर बिक रही है।

कौन जाने ? कार में पंचर कर देंगे, तो मैं बाहर न जा पाऊँगा। ऐसा किया तो दोनों की टाँगे तोड़कर रख दूँगा——रामू सोचता-सोचता उठा और गुसलखाने में चला गया।

ग्यारह बजे तक गप्पें चलती रहीं, प्रेक्टिस का ख़याल ही न रहा। फिर रामू ने सोचा——ये ही तो शहर के बड़े लोग हैं, इन्हीं के जाने-पहचाने ही तो शहर के कर्त्ता-धर्ता हैं, इनसे काम बनेगा। शास्त्री ने ठीक ही तो कहा था—'अरे घर बैठे रहोगे तो कौन आयेगा, पाँच-दस से मेल-मिलाप करो, लोगों में घूमते फिरो, तब आप ही मरीज़ आने लगेंगे।'' बड़ा बातूनी गपोड़ हो गया है।

'मुझे भी किसी की प्रेक्टिस विरासत में मिलती तो अच्छा होता। आराम से ज़िन्दगी कट जाती, और अब तो हर चीज़ हमें ही शुरू से करनी होगी। खड़ी चढ़ाई है, एक-एक कदम रख कर रास्ता तय करना होगा। चढ़ाई में ये सब लोग सीढ़ियों की तरह हैं, रंगाराव ही कह रहे थे, पुलिस के कितने ही केस हैं, एक-दो महीनों में भेज देंगे तो काफ़ी हैं।

'इस राम मूर्ति का भरोसा न करो। अपनी जात वालों की ही मदद करेगा। क्यों न करे, लोग यही तो सोचते हैं। मेरी जातिवाले मेरी मदद कर रहे हैं। मदद ? खाक, कुछ नहीं; यह सोचने का तरीका ही ग़लत है। शास्त्री भी तो ब्राह्मण है। पर मदद करने की कोशिश कर रहा है।

कुछ न-कुछ होगा ही, अब निश्चय कर लिया है; अगर प्रेक्टिस करने के लिये शराब की बोतलें भी हज़्म करनी होंगी तो हज़्म कर जाऊँगा। जब मेरी आमदनी होगी तो ससुर भी दुम दबा कर बैठ जायेंगे ………………ये दूध के कनस्तर, उठाकर सामने कोट की

नहर में फेंक दूँगा,……हाँ……' वह दाढ़ी बनाता-बनाता आईने के सामने मुसकराया।

भोजन-कक्ष में गया, मेज़ पर ज़ोर से हाथ मारा। एक नौकर ने थर्मोस लाकर रख दिया। पत्नी परदे के पीछे से देख रही थी। साढ़े नौ बजे का वक्त था। रामू कभी इतनी देर से न उठा था। कभी इतनी देर से रात को घर न आया था। शायद बेसिर-पैर के सन्देह कर रही होगी। रामू को इसकी फ़िक्र न थी। वह उसको मनाने की मूड में न था।

कॉफ़ी पीकर वह अपने कमरे में चला गया। कमरे में पंखा न था, हवा न थी। बराण्डे में बेंत की कुर्सी घसीट कर बैठ गया। फाटक के सामने पाँच-छः मरीज़ थे, उनकी शक्लें ही यह बता रही थीं, बढ़ी दाढ़ी, पीले सूखे चेहरे—एक स्त्री खद बीमार, शायद बुखार, और गोद में लड़की बड़ा पेट, शायद तिल्ली बढ़ी हुई थी, खड़ी थी—सभी ग़रीब व निम्न-मध्यम श्रेणी के। वहाँ तो कभी इक्के-दुक्के मरीज़ भी न आये थे, अब आये तो इस तरह के, और इतने सारे।

उसके ससुर अपनी ऊँची आवाज में उनसे बातें कह रहे थे, जैसे धान का या किसी बछड़े का भाव-ताव पटा रहे हों, "कितना दोगे?"

"हमें डा० पिल्लई के चपरासी ने भेजा है।" रोगियों ने कहा।

रामू चौंका।

"किसी ने भी भेजा हो, कितना दोगे?"

"क्या यहाँ डा० रक्षित की तरह इलाज नहीं होता?" गाँव के रोगी ने उत्सुकता प्रकट की।

"पूरी पन्द्रह रुपये की फ़ीस है, और दवा के दाम अलग," रामू के ससुर आँखें बड़ी-बड़ी करके, उंगलियाँ दिखाकर, बतला रहे थे।

रामू को गुस्सा आया। ससुर पर और पिल्लई पर। 'अच्छा मज़ाक

है, प्रेक्टिस नहीं है तो क्या कोई इस तरह के मरीज़ भेजकर मज़ाक करता है ?' उसने सोचा, और—और ससुर साहब ? जो कुछ कहना होता है धीमे से क्यों नहीं कहते, चिंघाड़ते क्यों हैं।

"हमें पन्द्रह रुपये ही देने हों तो यहां क्यों आयेंगे ? डा० रक्षित के पास जायेंगे। नहीं तो सरकारी अस्पताल में। वे सब एक साथ पैर घसीटते-घसीटते डा० रक्षित के अस्पताल की ओर चले गये।

डा० रक्षित ! डा० रक्षित !! डा० रक्षित !!! गुनगुनाता, बाल नोचता, पैर पटकता राम, अपने कमरे में चला गया। 'मरीज़ भी क्या आये ? आये और चले गये।' उसके ससुर अपनी लड़की से कह रहे थे, और राम मन-ही मन खौल रहा था।

१७

यह घटना क्या इतनी जल्दी ही घटनी थी [illegible] पहली बात हुई थी। कड़वा अनुभव। और अब [illegible] होती है, कर्त्तव्य होता है रोगी को निरोग रखना। [illegible] फीस मांगा है, और मैं ? हटाओ इन ख्यालों को……[illegible] था—इस तरह के ख्याल काई-से होते हैं, हटाते [illegible] जमते हैं। लेकिन पुराना पानी, जमी-जमाई काई [illegible] सामने आने को।

छोटी, कमसिन, [illegible] ऐसे [illegible] मैला-कुचैला, बिखरे बाल, [illegible] रोगी [illegible] बताया गया, वह किसी [illegible] मुंडेर पर से लुढ़क गई। [illegible]

हो जाती। हाथ की हड्डी टूटी, पैर टूटा। बेहोश।

माँ-बाप किसी कारखाने में मजदूर, उसे उठाकर डा० रक्षित के पास लाये। और बदकिस्मत ऐसी कि वह डाक्टर जो साल के तीन सौ पैन्तीस दिन अस्पताल में रहता था, कल न था। न उसकी पत्नी ही थी। था बेतजरबेकार, रंगरूट डाक्टर,। बुरे दिन, बुरा भाग्य, बेहोश मरीज। बिचारा डाक्टर पसीना-पसीना हो गया, अटकल-पच्ची की, कुछ न सूझा, घबरा गया, डर गया। सिगरेट फूँकने लगा।

आखिर दौड़ा-दौड़ा आया, प्रेक्टिस हो या न हो, हूँ तो एम० बी० बी० एस० डाक्टर ही। कहा, "डा० रक्षित अस्पताल में नहीं हैं, वे पियापुर गये हुए हैं, हमारी नर्स की शादी पर। नर्स कह रही थी, अगर वे न आयेंगे तो वह शादी न करेगी। लाचार पति-पत्नी को जाना पड़ा, और अब यह केस है, मैं नहीं जान पा रहा हूँ। दो-तीन जगह फ्रेक्चर है, मैं अकेला हूँ और मरीज़ बेहोश है।"

मैं चुप रहा। लानत है मुझे, मैं भी कोई डाक्टर हूँ। मृणालिनी साथ होती तो बेग लेकर हवा की रफ्तार से भागा-भागा जाता, और जो कर पाता, करता। ऐसा फंसा कि कुछ न पूछो, उस हालत में मैं करता भी तो क्या करता। डा० रक्षित का मरीज़ और मैं उसका इलाज करूं? जैसे कोई मैं टट-पूँजिया डाक्टर हूं, कितने ही मरीज़ हैं, कितने ही डाक्टर, पर कोई डाक्टर दूसरे के मरीजों को देखने तो नहीं निकलता है? अगर पियापुर जा रहे थे तो कहकर जाते, तो भी कुछ बात थी, ये ही सारा पुण्य बटोरना चाहते हैं, मैं क्यों जाऊँ?

फिर भी, बेहोश थी मरीज, कुछ-न-कुछ तो करना ही था। कह दिया, 'हूं, हूँ" उसे जेनरल हास्पिटल भेज दीजिये न?"

"मैंने उनसे कहा, पर माँ-बाप कहते हैं कि जेनरल हास्पिटल ले

जायेंगे तो वे एक हड्डी जोड़ने के लिये दो हड्डियाँ तोड़ेंगे," नौसिखिये डाक्टर ने कहा।

'मैं क्या करता? कह दिया यहाँ भेज दो।'

"और फीस?"

"फीस तो देनी होगी, मरीज़ की हालत नाज़ुक है, काम जोखिम का है।"

"वे बिचारे ग़रीब हैं, लड़की कहीं नौकरानी थी, बाप कारखाने में मजदूर है। लड़की के मालिक भी अमीर नहीं, यही साधारण अध्यापक।"

"मुझे अफ़सोस है, मैं कुछ न कर सकूँगा। यह किसी ट्रस्ट का मुफ़्त का ख़ैराती दवाखाना नहीं है।"

मुझे डाक्टर से यह न कहना चाहिये था, वह बिना कुछ कहे चला गया। कुछ तो कहता, न मालूम वह क्या सोचता होगा—यह डाक्टर नहीं, जल्लाद है।

ससुर ने जब यह सुना तो वे सन्तुष्ट हुए। जो मैंने किया उसका उन्होंने समर्थन किया। वाह संसार! वाह स्वार्थ!! कहने लगे, "अगर तुम इन ऐरे-गैरों का यों ही इलाज करोगे, तो ये लोग ही आ मरेंगे, और कोई न आयेगा, अच्छा ही किया कि न किया।"

"अच्छा क्या किया? ख़ाक, ये लोग क्या जानें कि आदमियत किस चिड़िया का नाम है, दलीलें हैं······जली-कटी दलीलें, अब सोचता हूँ अच्छा नहीं किया, पर पछताये क्या होत है।

कुछ दिन पहले भाई ने एक मरीज़ भेजा। भट्टे में कोई दीवार गिरी, उसका हाथ टूटा। ससुर साहब ने फाटक पर ही कह दिया, "यहाँ फीस ली जायेगी, भाई हो या कोई और, फीस, हाँ, हाँ, नहीं तो जेनरल हास्पिटल या उन कमबख़्त रशिम के पास······" साफ़-साफ़ लट्ठ मार कर कह दिया।

गँवारू भद्दा ढंग। बेदिल का गन्दा सलूक।

इधर भाई से बिगड़ी, मुझे भी बुरा लगा। क्या करूँ? इनसे अलग रह नहीं पाता, और जब तक ये रहेंगे, मुझे प्रेक्टिस तो करने देंगे नहीं, आदमी भी न रहने देंगे। क्या करूँ?

रोज़-रोज़ की चख-चख, लाख रुपये दिये हैं, बेंक में हैं, सूद खा रहे हैं, क्या इसीलिये डाक्टरी पढ़ी थी? क्या इसीलिये पिताजी ने डाक्टरी पढ़ाई थी? क्या मृणालिनी को इसी तरह की डाक्टरी करने के लिये ही इतने सारे वचन दिये थे।

अब हालत यह है, डाक्टरी भी नहीं चलती और बदनामी अलग। बुरी ऐंठ,······बदनामी हो तो हो, मेरा दिल ही मुझ पर रोड़े-पत्थर फेंक रहा है, सड़े अंडे, सड़े टमाटर,······दुनिया को दुत्कार सकता हूँ, पत्नी और ससुर को गालियाँ दे सकता हूँ, पर इस दिल से कहाँ भागूँ?

मुझे प्रेक्टिस करनी होगी······इस दुनिया के ढंग से, एक बार आय का रास्ता निकल आयेगा तो आदमियत का रास्ता निकल आयेगा ······शास्त्री का रास्ता बुरा ही सही, पर मंज़िल पर पहुँचायेगा······ यहाँ बैठे-बैठे आत्म-ग्लानि से जलने के बनिस्बत बुरी सोहबत ही भली। प्रेक्टिस के लिये सब-कुछ ठीक है।

१८

दिन-भर इसी तरह के खयाल उठते रहे। इसी मूड में वह शास्त्री की प्राइवेट क्लब में जा पहुँचा। शराब का दौर चल रहा था। गप्पें

चल रही थीं। वे सब-के-सब नगर के गण्य-मान्य व्यक्ति थे। प्रतिष्ठित। प्रभावशाली।

"अरे, क्यों यों मुँह-लटकाये हुए हो?" गणपति शास्त्री ने पूछा।

"यों ही।"

"ज़रा आओ तो, सब ग़म चला जायेगा। ऐसा मूड बनेगा कि अँधेरे में भी रोशनी देखोगे। कुर्सी पर बैठे-बैठे जाने कहाँ-कहाँ की सैर कर आओगे।" गणपति शास्त्री ने गिलास आगे बढ़ाते हुए कहा।

"काम न हो, समय हो, सिगरेट भी न हो तो आदमी को किसी और सज़ा की ज़रूरत नहीं है, सताने का यही सबसे बड़ा तरीका है। सिगरेट हो तो चौबीस घंटे आराम से कट जाते हैं।" श्री सत्यनारायण जी ने अपने अनुभव की बात की।

"अगर कोई सिगरेट नहीं पीता हो तो?" रामू ने पूछा.

"वह आदमी नहीं, बच्चा है।" सत्यनारायण जी ने कहा।

"पैसा हो और समय का बोझ हो और आदमी कुछ न कर पाता हो तो उस आदमी की यह बेवकूफ़ी है, समझे।" शास्त्री ने कहा। वह उस दिन अच्छी मूड में था। लड़कियों की संख्या अधिक थी, बोतलें भी अधिक, तरह-तरह की। मित्रों की संख्या अधिक, न मालूम क्या बात थी?

रामू को लग रहा था कि वे सब उसकी बेकारी पर ताने कस रहे थे। उसे बुरा लगा। दुःख हुआ। यों तो पहले ही दुःखी था, अब मज़ा करते लोगों को देख, उसका दुःख और बढ़ गया था. उसमें भी मज़ा करने की लिप्सा कहीं सुलगी, मगर गिलास न छू सका।

"सिगरेट पीते हैं तो समय रेंगता-सा है, शराब का दौर चलता है, तो वह उड़ता है, सिगरेट और शराब में यह फ़र्क़ है, फिर दोनों का अजीब साथ है ·····" श्री सत्यनारायण जी कह रहे थे।

"मुझे यह समझ में नहीं आता कि जब आदमी सुखी हो सकते हैं तो वे क्यों दुःखी होते हैं ?" डा० वीरस्वामी पिल्लई ने कहा।

"हूँ, तुम्हें तो किसी चीज़ की कमी नहीं, फिर क्यों दुःख पालते हो ?" गणपति शास्त्री ने एक लड़की को इशारा किया।

"यार, फिर तुम्हें तो ऐसा मौका मिला है जिसके लिये लोग तरसते हैं और नहीं पाते; बस अपने शास्त्रीजी की मेहरबानी समझो, वरना ऐसी चीज़ पैसा बहाने पर भी कहीं न मिलेगी ।" पुलिस इन्स्पेक्टर श्री रंगाराव ने कहा।

रामू पर इन बातों का असर पड़ा, अगर वह और किसी दिन किसी और अवस्था में ये बातें सुनता तो शायद अनसुनी कर देता, पर अब वह सभी जगह इतना तिरस्कृत हो रहा था कि ये बातें उसे जचीं। और-तो-और युक्तिपूर्ण भी लगीं। घर में आफ़त, बाहर निराशा, कहीं शान्ति नहीं, समस्यायें-ही-समस्यायें। कहीं सुलझाव नहीं, कहीं हल नहीं, आखिर मुझे कहीं शान्ति मिले। मैं भी तो सुख का अधिकारी हूँ, और मैं तो प्रेक्टिस के लिए यह कर रहा हूँ। इन लोगों का साथ चाहिये और इन लोगों का शराब में साझा बँटाये बग़ैर इनका साथ मिलेगा नहीं। फिर शराब भी क्या बुरी चीज़ है, थोड़ी सी हो तो पिऊँगा, पियक्कड़ थोड़े ही हो जाऊँगा, सिगरेट पीता हूँ, शराब चखी तो क्या हो गया ? नहीं भायी तो छोड़ देंगे''' ''रामू ने गिलास छुआ, लेकिन तब भी न उठा पाया। पास खड़ी लड़की ने उसके मुख में गिलास रख ही दिया, वह मुसकराई उसे गुदगुदी-सी हुई, रोमांच-सा हुआ। खूबसूरत, हसीन लड़की, और उसके होठों में सुनहली शराब का गिलास रख रही थी''''''साकी वाला।

एक घूँट निगल गया। खराब न थी, जलन ज़रूर हुई, कुछ गरमी-सी। मुख में अजीब स्वाद, होंठ आगे-पीछे करने लगा, जैसे उनका सिर्फ

भीगना काफ़ी न हो, चखा, अच्छा लगा, एक और चुसकी ली। मुख में महक-सी आने लगी, होंठ लालायित-से होने लगे, सिगरेट के धुएँ में कुछ और स्वाद आने लगा······और मुसकराती लड़की।

उपस्थित 'सज्जनों' ने ताली बजाई। उनके समाज में एक और व्यक्ति को प्रविष्ट कर लिया गया। रामू को बुरा तो लगा कि वह उस सोहबत में था। लेकिन शराब अपना असर दिखाने लगी थी। गिलास करीब-करीब खाली हो गया था। उस लड़की ने गिलास और भर दिया।

······लोग शराब पीकर बड़बड़ाते हैं, मैं पूरा गिलास पी गया, कुछ नहीं अनुभव कर रहा हूँ; बस थोड़ी सी गरमी है, क्या इसी को नशा कहते हैं ?" रामू ने पूछा।

"नशा तो तब चढ़ता है जब चस्का लगता है, अभी तो चखा ही है।" श्री सत्यनारायण ने कहा।

"अरे भाई, तुम डाक्टर हो, पियो न, हम लोगों का क्या जीवन है ? दिन-रात मरीजों के साथ रहना पड़ता है, मरीजों की-सी ज़िन्दगी, कभी मज़ा कर लिया करो।" डा० वीरस्वामी पिल्लई ने गिलास खाली करते हुए कहा।

'मरीज़ ? यहाँ तो मरीज़ों को पाने के लिये यह सब किया जा रहा है।' रामू ने सोचा। लेकिन कहा नहीं। सिगरेट का धुआँ उगलने लगा।

ताश का खेल चल रहा था। उसे ताश खेलना न आता था, देख रहा था। वह लड़की उसी के पास बैठी थी, उसे पत्नी याद आई। पत्नी है, पर कभी यह न सोचा कि पति का भी दिल है, और वह दिल खुश होने के लिये तड़पता है। उसको खुश करना उसका काम है, धर्म है। पत्नी भी भगवान् ने हमें क्या दी, वह मुसकराकर, उस

हाथ सहलाने लगा।

"नाम क्या है?"

वह बोली, "मार्था?"—सुहावनी चितवन।

रामू उठा, जैसे गरमी बहुत हो गई हो। उसका हाथ पकड़कर लॉन पर घूमने लगा।

"अरे भाई, बहुत जल्दी असर कर रहा है, खतरा है!" सत्यनारायण ने कहा, और ताश के पत्ते सिगरेट के धुएँ में सिर पीछे करके देखने लगे।

वह क्लब विचित्र-सी थी, सदस्यता-शुल्क कुछ न था। गणपति शास्त्री सब प्रबन्ध करते थे। शराब मगाते थे, और हर कोई शराब के लिए अपने-अपने हिस्से के रुपये देते, मँहगी शराब वहाँ सस्ती मिलती। ऐसी शराब जो कहीं न मिलती वहाँ मिलती। शास्त्री न मालूम कैसे प्रबन्ध करता था। वे थोड़े खर्च में ही बहुत कुछ मजा कर लेते थे।

लड़कियाँ थीं जो जितना चाहे दे। लड़कियाँ मान जायें तो चाहे न दे। पर इसका दूसरों से कोई सम्बन्ध न था। 'क्लब' के कोई नियम-नियन्त्रण न हों। सच कहा जाय तो शास्त्री की 'चाँडाल-चौकड़ी' थी। जिसमें शहर के बहुत-से जाने-माने आदमी सदस्य थे। कई एक-दो बार निमन्त्रित भी होते थे।

रामू शराब के दो-तीन गिलास गटक गया, नशा तो नहीं चढ़ा था। पर एक प्रकार का विचित्र उल्लास उसमें आ रहा था। वह मार्था से गप्पें लगाता रहा। मार्था का तो यह पेशा था। चुम्बन आदि से वह उसको और प्रफुल्लित करने लगी। रामू को लगा जैसे कोई थके अंगों पर मालिश कर रहा हो।

सिगरेट और शराब में समय सचमुच बिजली हो रहा था। देखते-देखते बारह बज गये। लोग जाने लगे तो वह भी उठा। मार्था को

उसके घर छोड़, जब अपने मकान पर पहुँचा तो साढ़े बारह बज रहे थे। बिजलियाँ बुझ चुकी थीं, वह लड़खड़ाता-लड़खड़ाता अपने कमरे में गया और बेहोश-सा सो गया।

१६

रामू देरी से उठा। सिर-दर्द सताने लगा। आँखें कभी खुलतीं, कभी मुँदती, पैर चक्की-से; खड़ा होता तो लेटने की मर्जी होती। लेटता तो खड़े होने को जी चाहता।

"कॉफी" वह बिस्तर पर से चिल्लाया।

कोई न आया। रसोइया तो घर में था नहीं कि जी हुजूर कहता, भागा-भागा आता। एक नौकर था, और वह कहीं गया हुआ था। दो-तीन दूध वेचने वाले थे। सब काम श्रीमती स्वयं करती थीं। बचत का एक-तरीका, पैसा कमाने का एक रास्ता।

"कॉफ़ी!" रामू चिल्लाया, आवाज़ गूँजकर रह गई। बाहर झाँक कर देखा। पेड़ की छाया सीधी-सी पड़ने लगी थी, गयारह बज चुके होंगे।

कोई न आया। उसकी पत्नी ने आवाज़ सुनी तो पर गई नहीं।

"कोई नहीं है क्या कमबख्त यहाँ?" रामू चिल्लाया। उसकी पत्नी गुस्सैल हथिनी-सी पैर पटकती धम-धम करती आई, "किसे कह रहे हैं आप कमबख्त? मालूम तो है ही कोई नौकर नहीं है।"

"जाओ जल्दी कॉफ़ी लाओ।"

"मैं आपकी खरीदी हुई कोई दासी नहीं हूँ।"

"कह रहा हूँ, कॉफ़ी लाओ," उसकी आवाज़ में तेज़ी थी। पत्नी तब भी न समझी।

"ग्यारह बज गये हैं, घर में दूध नहीं है, कॉफ़ी नहीं बन सकती।"

"नहीं है तो किसी को होटल भेज कर मंगाओ।"

"मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप रात-भर कहाँ रहे?"

"जहाँ मेरी मर्ज़ी वहाँ, तुम्हें इससे क्या मतलब?"

"और किसे क्या मतलब होगा? मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।"

"होगी, पर मैं तुम्हारा खरीदा हुआ पति नहीं हूँ।"

"हूँ।"

"कहता हूँ कॉफ़ी मंगवाओ।"

"एक तो काम नहीं तिस पर ये ऐंठ, ये ऐश······।"

"सम्भल कर बात करो।"

"नहीं तो क्या करेंगे?"

"क्या करूँगा?" रामू झुँझलाया।

"पास धेला नहीं है और चले हैं······हाँ-हाँ मुझे यह सब गवारा नहीं है। आप समय पर आ जाया कीजिये। शादी किये इतने साल हो गये हैं कभी खुलकर बात न की। कभी कहीं नहीं ले गये, और अब ये······।"

"तुम जाओ यहाँ से।"

"कहाँ, यह मेरी जगह है।"

"मैं कहता हूँ जाओ, भगवान् के लिये," रामू चिल्लाया, और पास का टेबल-लेम्प पकड़ना चाहा। फेंका, पर तब तक उसकी पत्नी दरवाज़े से निकल गई थी। टेबल-लेम्प दरवाज़े पर लगा और टुकड़े-टुकड़े हो गया। रामू पत्नी का वह भयंकर रूप देख रहा था। जो इतने दिन छिपा हुआ था। वह यह नहीं समझ पाता था कि कोई

स्त्री यह न चाहेगी कि उसका पति परस्त्रीगामी हो। भले ही हर स्त्री उसकी पत्नी की तरह न बरतती हो।

'आखिर मैंने किया ही क्या है ? क्या किसी लड़की से बात करना तक गुनाह है। रात को देरी से आना गुनाह है ? मज़ा करना गुनाह है ? कभी-कभी ही तो देर से आया हूँ। फिर कल भी अगर देरी से आया तो इसीलिए ही न कि मैं प्रेक्टिस के लिये दाँव-पेच खेल रहा था। मैंने कॉफ़ी ही तो माँगी थी और यह ऊट-पटाँग बकवास करने लगी।

'आखिर इस लौंडी का हक ही क्या है ? लाख रुपये दिए हैं, पर वे सब उसी के नाम ही तो हैं। पत्नी होने के नाते मुझ पर धौंस चलाने का अधिकार तो नहीं है। बड़ी चुड़ैल है। इसने मुझे समझ क्या रखा है ?'

अभी वह सोच रहा था कि पत्नी पास के कमरे में दूधिये नौकर को थर्मोथफ्लास्क देकर काफ़ी लाने के लिए कह रही थी। नौकर ने पीठ मोड़ी कि वह गुनगुनाने लगी—"साहब हैं। दांत भी साफ़ नहीं किये। उठते ही कॉफ़ी चिल्ला रहे हैं।"

रामू ने पैनी नज़र से उस तरफ़ देखा, "क्यों उबल रही हो ?"

"हूँ," पत्नी जल्दी साँस लेती-छोड़ती चली गई, जैसे कोई अपरिचित दुर्गन्ध आ रही हो।

कहीं यह समझ तो नहीं रही है कि मैं पीकर आया हूँ। इसे क्या मालूम कि फ्रेन्च शराब की क्या बू होती है। सोचेगी कि कोई दवा होगी। अगर न सोचा तो क्या ? वह चादर हटाकर उठ खड़ा हुआ।

'न सोचो तो क्या, किसको क्या डर है ? एक तो सुख न दो, अगर वह सुख और कहीं पाओ तो ख्वाहम-ख्वाह लड़ो-झगड़ो, अजीब शामत है, अजीब ज़िन्दगी है।

वह गुसलखाने में गया, नहाया-धोया। 'इस घर में रहना ही बुरा, पर कहाँ रहूँ? पिताजी ने शादी कर दी और घर से चलता कर दिया। मैं डाक्टर हूँ, अगर घर से लड़-झगड़ कर गया तो पिता की बदनामी, ससुर की बदनामी। कहीं नौकरी करूँगा तो बाहर जाना होगा। यहाँ करूँगा तो लोग लाख रुपये का हवाला देंगे और ये लोग समझते नहीं हैं कि प्रेक्टिस—प्रेक्टिस चिल्लाने-मात्र से नहीं चल पड़ती है।

'हूँ, किसी दिन समझेंगे।' वह घर से बाहर सिर हिलाता-हिलाता आया। कार भी न ली, बाहर गया, साइकल-रिक्शा पर जा चढ़ा। कॉफ़ी की प्रतीक्षा भी न की, साइकिल-रिक्शा पर कॉफी-हाऊस भी गया। कार पर आने वाले को साइकिल-रिक्शा पर आता देख लोग क्या सोचेंगे?

कहाँ चलें? सोचा कि पिताजी के पास जायेंगे, पर क्यों? भाई के पास? अगर पिताजी ने देख लिया तो? उसने जेब टटोली, न पर्स था न पैसा ही।

साइकिल-रिक्शा को उसने गणपति शास्त्री के घर जाने के लिये कहा। वह वहाँ था, खाना खाने के लिये आया था। उसी ने साइकल-रिक्शा के लिये भाड़ा दिया।

"कार क्या हुई?"

"रिपेयर के लिए भेजी है।"

"अरे फ़ोन कर देते तो मैं अपनी भेज देता।"

"कार लेने ही आया हूँ। पर्स लाना ही भूल गया, जल्दी-जल्दी चला आया।" उसने झूठ बोल दिया और शर्माया भी नहीं।

कार लेकर वह माथी के घर, न जाना चाहते हुए भी, गया। बरबस, वहीं कॉफ़ी वगैरह पी।

बिगड़े जब कुछ और बिगड़ते हैं तो ख़ास फ़र्क नहीं पड़ता, पर जब सुधरे बिगड़ते हैं तो प्रायः लुढ़कते जाते हैं। एक फ़र्श पर से गिरता है, दूसरा छत से लुढ़कता है—रामू लुढ़कने लगा। रोज़ 'क्लब' जाता, शराब पीता और वह सब करता जो लोग शराब पीकर करते हैं। रात को घर कभी समय पर न आता, दिन में भी ग़ायब रहता, कोई कुछ पूछता तो लाख झूठ बोलता। कहता, मरीज़ देखने गया था। डाक्टर से मिलने गया था। पिताजी से बातचीत करने गया था और न मालूम क्या-क्या कहता? शर्मिन्दा भी न होता।

'सोचा करता जब एक आदमी पत्नी के पास जा सकता है तो और स्त्रियों के पास क्यों नहीं जा सकता? जब परिवार आदि का झंझट नहीं हो तो सब स्त्रियाँ एक-जैसी हैं। पतिव्रता, पत्नीव्रता का प्रश्न परिवार से जुड़ा हुआ है। मार्था का कोई परिवार नहीं, बाज़ारू लड़की है, जैसे मेरी वैसी औरों की। समझ में नहीं आता, जो एक स्त्री के साथ कर्त्तव्य है वही दूसरे साथ व्यभिचार क्यों हो जाता है?

'एक स्त्री से सुख न मिलता हो, तो मैं क्यों सुख से वंचित रहूँ। क्यों न और स्त्रियों के पास जाऊं? क्यों जवानी ज़ाया कर दूँ? पैसा इसलिए ही तो नहीं है कि तिजोरियों में बन्द करके पूजा करूँ?'

'ग़लती हर कोई करता है, ग़लती को ठीक बताने का, बनाने का दुस्साहस कम को होता है; अगर वह दुस्साहस हो तो अनुचित अनुचित नहीं लगता, औचित्य और अनौचित्य की भावना ही चली जाती है. बचा रह जाता है अहंकार, और अहंकार पर पनपने वाली ऐन्द्रिकता—

रामू इसका कोई अपवाद न था।

क्लब सस्ती ही सही, पर कंजूसों के लिए यह ही बहुत बड़ा खर्च था, फिर मार्था भी बहुत बड़ा खर्च। मौके-बे-मौके कोई-न-कोई बहाने कर अब-तब पैसा ऐंठने लगी थी। रामू के पास अपना पैसा कम न था। कारोबार में उसका हिस्सा था, मगर पिता ने कह रखा था कि वह सब उसके हिसाब में जमा हो रहा था, जब वे जरूरी समझेंगे तो मय सूद के दे देंगे। दहेज में पैसा मिला था, इसलिए रामू इसके विरुद्ध कह भी न सका। अन्यथा भी कुछ न कहता।

पैसे वालों के घर पैदा हुआ था, पैसा था, पैसों की कीमत न जानता था। उन दिनों आदर्शों का भी असर था, सेवा की भावना प्रबल थी। जैसा कि बाद में हुआ, वह कुचली न गई थी। गरज़ यह कि उसे पिता का पैसा नहीं मिल रहा था।

'आदर्शों का पालना ही बुरा है।' मृणालिनी पगली है, आदर्शों के पीछे बावली हुई-हुई है। उसी का सहवास और आज पछता रहा हूँ, अगर तब आदर्श न होते, तो क्या आज मैं वह करता जो मैंने किया।

'ससुर ने ढेर-सा रुपया दिया। इधर-उधर की बातें कह-सुनकर पिताजी को लेने न दिया, तब मुझ पर आदर्शों का भूत सवार था। मैं-ने स्त्री का धन लेना अनुचित समझा, दहेज की प्रथा ही वाहियात लगी। डाक्टर हूँ, पंगु तो नहीं हूँ, प्रेक्टिस चलेगी, पैसा आयेगा, मैंने स्त्री को पैसा दे दिया। उसके पिता ने उसके नाम वह जमा कर दिया, मुझे क्या मालूम कि ये लोग इतने कमीने काइयाँ निकलेंगे।

'सो अब मामला उलटा निकला, पैसे देते नहीं, दिये बग़ैर न प्रेक्टिस चलती है न ज़िन्दगी चलती है, बड़ी ग़लती की।'

रामू ग्यारह बजे उठकर कार में गणपति शास्त्री के यहाँ जा रहा था, और ये सब बातें पुरानी-नई उसके मन में बुदबुदा रहीं थीं। जेब

में पूरे पाँच सौ रुपये थे। कहती थी, 'आपको इसे लेने का कोई अधिकार है हूँ, जब उस पर अधिकार है तो उसकी सब चीज़ों पर अधिकार है. औरों ने भी दहेज लिया है। कई डाक्टरों ने दहेज के भरोसे प्रेक्टिस की है, और उनके ससुर उनके सामने दबे-गिरे रहते हैं। दामाद के बड़प्पन में अपने को बड़ा समझते हैं।

'मेरा ससुर ? भगवान भला करे, हटी ढीठ, अपने से किसी को बड़ा समझता ही नहीं, शायद एक डाक्टर को इसलिए ही दामाद बनाया था। क्योंकि उसके छोटे भाई का दामाद डाक्टर है, प्रेक्टिस हो या न हो पर फाटक का बोर्ड हमेशा चमकाये रखता है। घर में भले ही मुझ पर गोलियाँ दागें, पर बाहर मुझे लेकर डींग मारता है, पैसा वापस देकर मैं उनके हाथ में कठपुतली हो गया—ग़लती की।'

वह पुल पार करके चर्च की ओर मुड़ा। 'एक थप्पड़ मारा, मुख खोलकर खड़ी हो गयी, गले का हार ले लिया। पूरे पाँच सौ में बिका, क्लब का बिल दे दूँगा, कुछ मार्था को दूँगा, और पत्नी के गले में यह हार लगता भी तो ख़राब था। वह ऐसी कौन-सी चीज दे रही है जो मार्था नहीं दे रही है ? सीधे ढंग से पैसा दिया नहीं। कौन माँगता फिरे इनसे ? इन पशुओं की दुम सीधी करने का यही एक तरीका है, कोई बात नहीं।'

इतनी सब जिरह के बाद भी रामू के मन में कोई कहीं शिकायत करता-सा लगता था, और वह अनायास अपने को निर्दोष साबित करने की कोशिश कर रहा था, यह सब कुछ अनजाने ही स्वतः हो रहा था।

गणपति शास्त्री के घर गया, देखा, पूरे साढ़े बारह बज रहे थे, शास्त्री सूट पहने तैयार थे। उनके साथ दो-तीन लड़कियाँ थीं—शेला और मार्था भी।

"ठीक समय पर आये, कार घर में पार्क कर दो, पास है

मोटर-बोट।" गणपति शास्त्री ने कहा और बाहर चला गया। लड़कियों को उनका ड्राइवर कार में ले गया। रामू भी उनसे आ मिला।

एक फ्रेन्च जहाज़ आया हुआ था। शास्त्री उसके भी एजेन्ट थे। जहाज़ के कप्तान ने उनको भोजन के लिए निमन्त्रित किया था। शास्त्री अकेला न जाना चाहते थे, उन्होंने रामू को साथ ले लिया और किसी ने उस समय आना न चाहा।

नहर में शास्त्री की कम्पनी की अपनी मोटर-बोट थी। उनसे पहले ही वे लड़कियाँ वहाँ पहुँचा दी गई थीं।

मोटर-बोट का चालक, नौकर वग़ैरह सब सावधान खड़े थे, मालिक जो आ रहे थे। किश्ती पुल के पास खड़ी थी। रामू को अपने घर का कटहल का पेड़ दीख रहा था, घर दीख रहा था। 'अगर पिताजी ने देख लिया तो—' भय उठा, वह शास्त्री की बग़ल में बैठ गया, आड़ में। 'मैं डर क्यों रहा हूं ? अब तो वे खा-पीकर आराम कर रहे होंगे, खैरीयत है कि उनकी ज़िन्दगी घड़ी की तरह चलती है, वरना······।'

मोटर-बोट जब उसके घर के सामने से गुज़र गई तो वह मोटर-बोट के सामने आ खड़ा हुआ। काकिनाड़ा में पैदा हुआ था, पाला-पोसा गया, पर वह पहली बार मोटर-बोट में जहाज़ के पास जा रहा था।

जहाज़ बहुत बड़ा न था, माल ढोने वाला। अच्छा खान-पान। वहीं आराम की व्यवस्था, शाम को वहीं शराब का दौर चला—नृत्य; मार्था और शेली ने कप्तान के साथ नृत्य किया। कप्तान कुछ झुँझलाया भी, कि क्या यहाँ ये ही दो लड़कियाँ हैं। शास्त्री कुछ न कह सके।

जहाज़ पर और भी लोग थे, कई शराब के नशे में। दो लड़कियाँ, और बीसियों आदमी। दंगा हो सकता था; इसलिए कप्तान उनके साथ वापस आया। साथ में बहुत-सी शराब की बोतलें शास्त्री के लिए लाया।

मोटर-बोट वहीं रुकी, जहाँ एक एंग्लो-इन्डियन महिला चकला चलाती थी ''सफ़ेद वरदी पहने, मोटर-बोट में जहाज़ का अफ़सर''' नशे में वह चित्र उसके सामने आया। आज स्वयं वह मोटर-बोट में आ रहा था।

कुछ गज़ दूरी पर उसके पिता का घर था, उसके भाई-बन्धु थे। उसे बचपन से यहाँ न आने के लिए कहा गया था। भाई ने यहाँ की लड़की से शादी की और परिवार से निकाल दिया गया, और मैं इसी जगह पर ?

मैं कोई बच्चा नहीं, अगर सब ठीक होता, बच्चोंवाला होता, जहाँ चाहूँ वहाँ जाने का मुझे अधिकार है, मेरी मरज़ी, वह सीना तानकर अन्दर घुसा, आधी रात का समय। पिताजी सपनों की दुनिया में होंगे।

सवेरे तीन बजे तक वह वहीं गुलछर्रे उड़ाता रहा।

२१

बारह बजे के करीब रामू उठा। नहा-धोकर भोजन के कमरे में गया तो उसकी माँ वहाँ थीं। उसकी माता कभी-कभी ही आती थीं, देख जाती थीं। लेकिन उस दिन वह वहाँ क्यों थीं, रामू आसानी से अनुमान कर सकता था।

"रोज़ क्या तुम इसी समय उठा करते हो ?" उसकी माँ ने पूछा। उनके मुँह पर नाराज़गी थी।

"माँ, नहीं तो" रामू झूठ बोल रहा था, भीगी [illegible] बना हुआ था।

"फिर आज क्यों उठे ?"

"रात देरी से सोया था," वह कह रहा था और उसकी पत्नी अन्दर चली गई। वह जानती थी कि पति की कोपदृष्टि उस पर थी।

"क्यों ?"

"यों ही", माँ को कहीं मालूम तो नहीं हो गया है, वह डरा, भले ही पीठ-पीछे हिम्मत कर बैठता था, पर अभी सामने अनम्र होने का हौंसला न था। किसी दिन तो मालूम होगा ही, मैं ही क्यों बताऊँ ?

"देखो, बेटा, इस उम्र में आवारागर्दी अच्छी नहीं, शादी हो गई है, घर-बार चलाओ। भटक-भटक कर इसमें दरारें न डालो। पत्नी को पत्नी समझो, गहनों की दुकान मत समझो," माँ कह रही थी और रामू उनको इस तरह ग़ौर से देख रहा था कि जाने अगले वाक्य में वे कहीं बारूद न उगल बैठें। वह मन-ही-मन पत्नी पर उबल रहा था।

"पैसे की जरूरत थी तो सीधे ढंग से भी लिया जा सकता है, लुटेरों की तरह खोंसने की क्या आवश्यकता थी ?" माँ ने पूछा। रामू ने सिर नीचा कर लिया। "पढ़े-लिखे हो, डाक्टर हो, और ये ख़राब आदतें पाल रहे हो।" माँ कहती कहती नरम पड़ गयी। आँसू लुढ़काने लगीं। वह वहाँ ठहरी भी नहीं, घर से चली गईं, जैसे यह कहने के लिए आई हों। अकसर रामू उनको फाटक तक छोड़ने जाता था, कार में भेजता था, पर उस दिन वह न हिला; अगर रामू को पहले कभी इतनी डाँट पड़ती तो शर्म के मारे ढह-सा जाता। अब वह गुस्से से काँप रहा था।

रामू को सन्देह था कि उसकी पत्नी घर जाकर माँ से शिकायत करके आई होगी। ये लोग तो पाई-पाई पर मरने वाले हैं, फिर कैसे पाँच सौ रुपये का हार देकर चैन से बैठेगी ?

"कहाँ हो, ए ?" रामू चिल्लाया। कोई जवाब न मिला।

"ए," वह फिर चिल्लाया।

"मैं कुतिया-कबूतर नहीं हूँ जो ए-ए, कह कर पुकारो, मेरा भी नाम है।"

"हाँ, हाँ नाम है रमणायम्मा, क्या बढ़िया नाम है ?...देखो, सुनो, मेरी माँ से चुगली की तो अभी तो हार ही लिया है तब हड्डी-पसली एक कर दूँगा," रामू की आवाज़ ऊँची थी, और गुस्से से गूँज रही थी। उसकी पत्नी भी घबरा गई। पिता घर में न थे। चला जाना ही उचित समझा।

ये दोनों ही नाक में दम किये हुए हैं, अगर सास भी जिन्दा होती तो जाने मेरी क्या हालत होती ? "जाओ यहाँ से।" रामू गुर्राया।

वह कॉफ़ी पी रहा था।

पिछले कुछ दिनों से वह अपनी पत्नी के गहने ले जा रहा था, बेच रहा था। यह ससुर जानते थे, वह उन पर भी झिल्लाया, बात बढ़ी दोनों में। उन्होंने लड़की को घर ले जाना चाहा, पर उसने जाने से इनकार कर दिया। घर की बात मायके में क्यों खुले ? फिर सास से चुगली करने क्यों गई थीं, है तो पति ही, और किस से कहे ? पर रामू तब उस हालत में न था कि इस सब पर ठंडे दिमाग़ से सोचे। वह पैसा उड़ाने में मस्त था, उस मस्ती में अपने को भूल रहा था।

खान-पान से निवृत्त होकर, सज-धज कर कार में बैठा था कि उसके घर से एक मुनीम भागा-भागा आया, उसने हाथ में चार-पांच सौ रुपये के नोट दिये।

"पिताजी ने भेजे हैं ?" उसने कहा।

"पिताजी ने ?" रामू ने आश्चर्य प्रकट किया।

"जी,"

"क्यों ?"

"आपके खर्च के लिये..."

रामू ने पहले उन्हें लेना न चाहा. इतनी उम्र के बाद, डाक्टर होने के बाद भी, पिता पर क्यों निर्भर रहूँ ? फिर यकायक ले लिये. पैसा किस को कब खराब लगा है ? अब तो वह पैसा इस तरह खर्च कर रहा था, बहुत कुछ होते हुए ही, उसकी कमी अखर रही थी।

कार में वह मार्था के घर चला।

तब मैं पहली-पहली बार वाल्टेयर से आया था, तभी सिगरेट पीना शुरू किया था। पास पैसे अधिक न थे, सस्ती सिगरेट पीता, कभी वेयर्स, कभी चार मीनार, खाँसता भी। न मालूम पिताजी को कैसे मालूम हुआ, उन्होंने पूरे छः डिब्बे ५५५ सिगरेट के भिजवाये। मैं समझ गया कि···फिर मैंने कभी घर में सिगरेट न पी।

उन्होंने एक बार कहा भी, "पीनी है तो अच्छी सिगरेट पियो, क्यों सस्ती सिगरेट पीते हो, न पीना सबसे अच्छा," वे स्वयं न पीते थे।

अब पैसे भेजे हैं। कहीं उनको मेरी ज़िन्दगी के बारे में मालूम तो नहीं हो गया है ? क्या इसने जाकर उनसे भी कहा होगा ? इतनी हिम्मत नहीं, इसने माँ से कहा होगा, माँ ने पिताजी से, और पिताजी ने पाँच सौ रुपये——।

अच्छी बला है, हटाओ।

उसकी पिछले दिनों ऐसी आदतें हो गई थीं कि वह किसी भी बात पर केन्द्रित रूप से अधिक समय तक न सोच पाता था। हर चीज़, सिग-रेट और शराब में कुल बुलाकर उलझ जाती।

वह मार्था पर इस तरह पागल था कि वह प्रायः दिन-रात उसके घर ही पड़ा रहता। वह स्त्रियों से ही स्त्रियों के साथ रहना सीख गया था। उसके जीवन में कई स्त्रियों ने स्थान पा लिया था।

एक ऐब जाता नहीं है कि और ऐब भी उस ऐब का साथ देने आ जाते है। रामू में कई ऐब आ गये थे।

वह मार्था के कमरे में गया और बाहर की दुनिया को बाहर ही छोड़ दिया। मार्था की दुनिया में चला गया।

२२

सवेरे-सवेरे दो-तीन बार श्री वापिराजु ने रामू के लिए खबर भिजवाई। इस प्रकार दो बार आदमी का आना असाधारण था। उसकी पत्नी को उसे उठा देना चाहिये था, पर उसने उठाया नहीं, न उठाने में कोई खास मतलब भी न रहा होगा। वह रामू से तभी बोलती जब रामू उससे बोलता, यों तो उसका बोलना कम, और जब बोलता भी तो उसकी पत्नी इतनी कड़वी तरह से बात करती कि अकसर चुप्पी रहती, अनबन। आजकल तो पति-पत्नी का भी सम्बन्ध न था।

नौकर ने जाकर कहा होगा कि रामू सो रहा था, इसलिए श्री वापिराजू ने कहला भेजा कि उसे उठा कर जल्दी लाया जाये। रामू को उठाया गया, वह कोसता-कुढ़ता उठा, साढ़े ग्यारह बज रहे थे। जब पता लगा कि पिताजी ने बुलाया है तो उसके बदन पर बिच्छू रेंगने लगे। हड़बड़ाता गया।

वह घर में घुस रहा था कि गणपति शास्त्री और सिप्ली कम्पनी वाले राममूर्ति चले आ रहे थे। रामू का माथा ठनका। राममूर्ति तो कभी-कभी घर आते थे, शास्त्री क्यों आया? और इतनी जल्दी? रात-भर जागकर क्या शास्त्री ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तक नहीं सोता है? फिर वह तो पिताजी से बड़ा रईस है, हैसियत भी बड़ी समझी जाती है, पर पिताजी तो उससे बड़े-बड़े लोगों को घर बुलाते हैं। पैसे वाला

है तो होगा, है तो उम्र में छोटा। पिताजी ने तो उसे काकिनाड़ा में दर-दर भटकते देखा था।

क्यों बुलाया ? कहीं मेरे बारे में पता तो नहीं लग गया है ? इन्होंने बता तो नहीं दिया है ? रोज़ रात को यहीं पास ही तो आता हूँ, कितने दिन छिपेगी यह बात ? पता लग गया तो क्या हो गया ? मैं बच्चा थोड़े ही हूँ ? एक क्षण में एक साथ ये सब बातें मन में कौंधीं, पिताजी की अवज्ञा में वह एक प्रकार का मज़ा भी लेने लगा था, वह पिता के प्रभाव से निकलने के लिए उद्धत, उच्छृंखल हो उठा था। एक उद्देश्य से उस गर्त में उतरा था, दूसरे उद्देश्य से उसमें रह गया था—आज्ञाकारी आदमियों को जब आज्ञा नहीं मिलती तो अकसर भटक जाते हैं।

"बैठो," रामू के पिता ने कहा। रामू बैठ गया। बापिराजू चुपचाप, गम्भीर हो, कोई हिसाब देखने लगे। रामू को वह चुप्पी चुभती-सी लग रही थी। थोड़ी-बहुत हिम्मत जो वह इकट्ठी कर पाया था, यकायक काफूर हो गई।

"हूँ," उसके पिता गुर्राते-से खुद सोच रहे थे। रामू संभलकर बैठ गया। स्कूल-बोय की तरह।

"माँ से मिले ?"

"जी नहीं,"

"जाओ, मिलकर जल्दी आओ," बापिराजू ने कहा। रामू चला गया। वह भयभीत था, वह न जान पाता था कि क्यों वह विस्फोटक भूमिका बन रही थी। माँ के पास गया, नमस्कार करके चला आया। उसने माँ को कुछ कहने का मौका न दिया, न माँ ने ही कुछ कहना चाहा। वह उसको ग़ौर से देखने लगीं, रामू को लगा जैसे वह टुकड़े-टुकड़े हो रहा हो। वह नीचे चला आया और पिता के पास जाकर बैठ गया।

"तबीयत ठीक है ?" पिता ने पूछा।

"जी,"

"इतनी देर तक सोते रहे तो मैंने सोचा तबीयत ठीक न होगी।"

"जी नहीं।"

"प्रेक्टिस तो दिन में होती है, रात को जागोगे तो दिन में सोओगे ही, प्रेक्टिस क्या करोगे ?" पिता ने कहा। जब प्रेक्टिस करने के लिए वह उस 'क्लब' में शामिल हुआ था, तब उसने यह न सोचा था। पिताजी ठीक कह रहे हैं—हूँ, वे तो हमेशा ही ठीक कहते हैं, कहते आए हैं।

"रात में जागोगे तो तबीयत ठीक न रहेगी, तब खुद मरीज हो जाओगे, तो डाक्टरी क्या करोगे ? हुं, ये सब लोग तो बन-बनाकर बिगड़ते हैं, और जो कुछ बिना बने ही बिगड़ते हैं, वे बेवकूफ़ हैं, घंटे-भर बाद दफ्तर आना, जाओ।" रामू के पिता ने कहा।

रामू सोचकर आया था कि गोलियां बरसेंगी, पर यहाँ तो फूलों से लिपटे काँटे बरसे, पिताजी क्यों नहीं कहते हैं कि तुम बिगड़ गये हो, नालायक हो, गधे हो, तब मैं कह दूँगा कि यह सब आपकी वजह से है, जो मैंने चाहा करने न दिया, और अब जब कि करने का समय आया है तो मैं सोच नहीं पाता हूँ कि क्या करूँ, सोच-विचार आप ही तो करते थे ? मैं क्या जानूँ, मगर ये कुछ कहें तब कहूँ न ?

रामू काफ़ी-हाउस में प्रातराश के लिए गया, फिर पिताजी के दफ्तर में आया, वह बड़ी सड़क पर था। एक दुमंज़िला मकान, पुराने ढंग का, दफ्तर भी पुराने ढंग का। गद्दों पर बैठते थे पिताजी, मसनद लगाकर। रामू दफ्तर गया, तो पिताजी के पास डा० कृष्णाराव बैठे थे। पिताजी चुप थे। डाक्टर साहब ने कहा, "बड़ी खुशी है, तुम्हारा काम है, तुम सम्भालो। मैं इस इन्तज़ार में था कि कब इशारा मिलता है

और मैं अब तुम्हें तुम्हारा काम सौंपता हूँ। आज से तुम अपने कर्मचारियों के चिकित्सक हो। जब कभी जरूरत हो तो मिल लेना, पैसे भले ही बहुत न मिलें, पर तजरबा मिलेगा," डाक्टर ने कहा, रामू ने चाहा कि फूट पड़े, पर चुपचाप खड़ा रहा, चाहा कि पिताजी को गले लगाये। पर उन्होंने तो कभी पैर भी न छूने दिये थे। उन्होंने ही यह सब कहा होगा।

"तो कल से यह काम तुम्हारा रहा, जो डॉक्टर राव को मिलता आ रहा है, वह तुम्हें भी मिलेगा, जा सकते हो।" श्री बापिराजु ने कहा और रामू डा० कृष्णाराव के साथ बाहर चला आया।

रामू कार में घर में जा रहा था, उसके मन में आया, अगर पिताजी ने यह पहले ही किया होता तो यह नौबत शायद न आती! कौन जाने? फिर वे एक बड़े-आदमी को महज़ इसलिये कि उनका लड़का डाक्टर था, काम से कैसे हटाते? अब खुद डाक्टर से कहलवाया है, अनुभव है, अक्ल है, मगर हम तो अब नशे में हैं, मस्त हैं, कौन सौ-डेढ़ सौ रुपये कमाने में माथापच्ची करे, पत्नी का लाख-डेढ लाख रुपया पड़ा-पड़ा ज़ंग जो खा रहा है, हटाओ परे।

शाम तक वह यही सोचता रहा। क्लब गया, गणपति शास्त्री थे, राममूर्ति थे। सत्यनारायण थे। पूरी की-पूरी चौकड़ी थी। वे उसको घूर-से रहे थे। अरे भाई तुम्हारे पिताजी ने समझ क्या रखा है? उन्होंने अपनी ज़िम्मेवारी हमें तो नहीं सौंप रखी है? खुद लड़के को लगाम में नहीं रख पाते और हम पर बिगड़ते हैं, बड़े आदमी हैं, लिहाज़ कर दिया। खैर जाने दो, आओ बैठो, भइया रामू।" गणपति शास्त्री ने गरम और ठंडे होते हुए, सर्राटे ले कह दिया। फिर मुसकरा दिया जैसे कोई अभिनय कर रहा हो।

एक लड़की ने थोड़ी देर बाद शराब लाकर सामने रखी। शास्त्री ने

कहा, "अरे इन्हें तो दूध लाकर दो, दुधमुँह बच्चे हैं, आज्ञाकारी पुत्र, जो पिताजी कहते हैं, वे करते हैं।"

रामू को यह बात चुभी, पर मुसकरा दिया। हँसता हुआ शराब पीने लगा। जैसे उसे पिता की परवाह न हो, न परिहास की परवाह हो।

परन्तु रात को वह घर जल्दी चला गया और पाँच-सात दिन तक उस तरफ़ न आया। रोज पिताजी के कारखाने में जाता, हाज़िरी दे आता। काम-वाम-कुछ न करता। उसे पिता की बात जची थी, पर ठीक तरह काम न कर पाता था।

२३

कुछ दिन तक संयम चला, फिर वह न रह सका। 'क्लब' जा ही पहुँचा।

पत्नी से उसने अच्छा सलूक करना चाहा, कसूर तो मेरा है कि मैंने शादी की। उसने कोई झूठ नहीं बोला, धोखा नहीं दिया। उसका दोष नहो कि वह अनपढ़ थी, बदसूरत थी, चिड़-चिड़ी थी। फिर उससे क्यों दूर रहा जाये? क्यों न उसके साथ रहा जाये? कुछ भी हो यह बाज़ारू स्त्री तो नहीं है, मेरे आधीन है, मुझ पर निर्भर। ये ख़याल रामू के मन में उठे।

जब उसने उससे बातचीत की तो बात-बात पर वह डंक मारती, ताना कसती, चिढ़ाती। उसकी बदचलनी पर टीका-टिप्पणी करती। रूठती, गुस्सा करती। रामू इतना न बदला था कि मनाता। उसको उसका व्यवहार भी अच्छा न लगा।

रह-रह कर उसे गुस्सा आता। शाम को बेचैनी बढ़ती, तिलमिला उठना, तड़पता, छटपटाता मुश्किल हो गया। खराब आदतें जल्दी आती और देर से जाती हैं। आदतों का जोर भी बहुत जल्दी जबर्दस्त हो जाता है।

वही चौकड़ी थी, पर श्री डा० वीरस्वामी पिल्लई न थे। रामू को अचरज हुआ, कहीं उन पर भी तो आत्म-सुधार की धुन सवार नहीं हुई है! फिर तो मुझे और शर्म आनी चाहिये।

वह अभी इधर-उधर देख ही रहा था कि श्री वीरस्वामी जल्दी-जल्दी चले आ रहे थे। आते ही कुर्सी घसीटकर बैठे और नेकटाई ढीली करके लम्बी-लम्बी साँस लेने लगे।

"अरे आप!" रामू को देख उन्होंने कहा, "हमने सोचा था कि आप तो वैरागी हो गये हैं। अच्छी चीज़ है, ज्यादह दिन बग़ैर इस के रहा नहीं जाता?"

"क्यों डाक्टर साहब, आज आने में बहुत देर हो गई? शास्त्री ने पूछा।

"क्या करें, एक नई डाक्टर—डाक्टर तो क्या डाक्टरिन आई है। उसके लिए कोई निश्चित आठ घंटे नहीं हैं, दिन-रात मरीज़ों के पीछे जुटी रहती है। उस जैसे को तो किसी डा० रक्षित-जैसे से शादी कर लेनी चाहिये थी, बड़ी गम्भीर, बड़ी कामकाजी, क्या बड़े क्या छोटे, सभी डाक्टर उससे डर रहे हैं, कब जाने किसकी शिकायत करे।"

"हूँ," "सत्यनारायण ने उत्सुकता दिखाई। रामू ने जानना चाहा, नाम क्या है?"

"डा० मृणालिनी," पिल्लई ने कहा।

"डा० मृणालिनी?" रामू ने भरा गिलास एकदम खाली कर दिया पेट में।

"क्या, आप जानते हैं उन्हें ?"

रामू ने सिर हिला दिया।

"साथ पढ़ी थी क्या डाक्टर ? "

"जी हाँ," रामू ने गिलास में थोड़ी शराब और उँडेल ली। सिगरेट का धुआँ उड़ाने लगा।

ताश खेला गया, गप्पे लगीं, पर उसने कोई उत्साह न दिखाया। मृणालिनी के बारे में सोच रहा था, अगर उसने कहीं देख लिया, तो क्या समझेगी ? तो उसने नौकरी कर ली है ? सेवा क्या हुई ? हटाओ, बढ़िया शराब क्यों इस तरह की फ़िक्र में खराब करते हो ?

वह जल्दी उठा, घर न गया, बहुत दिनों बाद मजा करने निकला था, और यह खबर सुन ली। पर मैं अपना कार्य क्यों बदलूं ? उसने कार ले जाकर उस एंग्लो-इंडियन महिला के मकान के बग़ल में रोकी। उसे डर था, सड़क के सामने रोकता तो घर का कोई आदमी देख लेता, और पिताजी से कहता फिर वही बात।

उस दिन मार्था उस मकान में थी। उसको उसने कार में बिठाया। इस बार वह मकान के अन्दर जाने का साहस न कर सका।

नहर के किनारे वे बीच की ओर चल दिये, तेल के टैंक की परली तरफ चान्दनी खिली थी। सारा शहर सोता लगता था। रेल के फाटक से कार आगे बढ़ी। दूर समुद्र का कुछ हिस्सा दिखाई दिया, फिर उसने कार मोड़ दी, सड़क बीच पर जाती थी।

"कहाँ जा रहे हैं ?" मार्था ने पूछा।

"बीच।"

"काकिनाड़ा के बीच पर तो सिवाय केंकड़ों के कोई नहीं आता-जाता। फिर इस समय······।"

"हूँ !"

"कहीं आप नशे में तो नहीं हैं ? क्या इरादा है ?" मार्था ने रामू के कन्धे पर हाथ रखा। सामने पुल था, लकड़ी का टूटा हुआ। रामू ने एकदम ब्रेक लगाया।

"आप भी खूब हैं।"

कार की ध्वनि थमी तो चारों ओर कोलाहल-सा सुनाई देने लगा। समुद्र का गर्जन, छोटे-मोटे नालों का कल-कल, झाड़ियों का सायँ-सायँरुदन, बियावान, जगह, भयानक।

"मालूम है कुछ दिन पहले यहाँ एक आदमी मारा गया था ? यही एक जगह है जहाँ मारे भी जाओ, और पाँच-दस दिन तक किसी को पता भी न लगे। दिन में कोई नहीं आता, रात में लोमड़ी-लकड़बग्घे घूमते हैं।" मार्था कह रही थी।

"मारा गया था ? मौत आती भी तो उनको है जो उससे भागते हैं। मुझे कोई क्यों नहीं मार देता ? मैं जीकर भी क्या करूँगा ? अब तक क्या किया कि आगे कुछ करूँगा।"

"आज आपको हो क्या गया है, क्या कह रहे हैं। मुझे यहाँ आज दर्शन पर लेक्चर देने तो नहीं लाये थे ?" मार्था ने कहते-कहते उठ उसके गले में हाथ डाल दिए और उसका चुम्बन करने लगी। "चलिए मुझे यहाँ डर लग रहा है।"

"ठहरो भी, बहुत शान्त जगह है, ठंडी-ठंडी हवा, और यह चमचमाती चाँदनी,......मैं सोचता हूँ...... ?"

"आइरे भी" मार्था ने उस भय में चुम्बनों की वर्षा-सी कर दी।

"तुम क्या करोगी मार्था, यदि हमारी कोई पुरानी साथिन बहुत दिनों बाद मिल जाय ... और हम......?"

"हम तो पत्नियों और साथिनों के बावजूद भी रहती हैं। प्यारे कभी-कभी पत्नियों के कारण और साथिनों की गैरहाज़िरी में, सच कह

'अब काकिनाड़ा आई है, कहेगी कि देखूँ तो तुम्हारी गृहस्थी कैसी है ? देखूँ तो वह लड़की कौनसी है. जिसे देख कर मुझे छोड़ दिया था, मैं क्या कहूँगा ?' यह खयाल उसके सिर पर हथोड़ा मारता-सा लगता था।

'आयेगी, देखेगी कि यह डाक्टर का घर नहीं है, दूधिये का घर है, किसान का घर है, गँवार लोग, मेरा अपना कमरा भी तो ठीक नहीं है।

'कभी मिल कर आशाओं के आलीशान महल बनाये थे। आयेगी, देखेगी यह बड़ा-सा बंगला और आशाओं की समाधि । कैसे लाऊँ ? लाये बग़ैर भी कैसे रहूँ ? अलादीन का दीया तो है नहीं कि रगडूँ और मनचाहा घर बन उठे——ये लोग घर बदलने भी न देंगे।

'काकिनाड़ा आई है, उसे मालूम है कि मैं यहाँ रहता हूँ, बताया भी नहीं, शायद नाराज़ है; क्यों न नाराज़ हो, मिलने जाऊँगा तो शायद बात न करे, देखे भी न ? क्यों न देखेगी ? इतनी खराब नहीं है।

'क़ाफ़ी स्त्रियाँ देख ली हैं, कई पढ़ी-लिखी, कई उस स्तर की भी जो ऊँचा समझा जाता है, पर मृणालिनी-सी कोई न देखी, कोई न मिली। लज्जाशील, विनयशील, आदर्शवादी, उत्साही, गम्भीर, अब तो मैं शायद उसके लायक भी न रहा।

'अब भी वह साझेदार हो जाय तो इस रक्षित की प्रेक्टिस मिट्टी में मिला दूँ, मैं भी कुछ काम का होऊँ, पर क्या ? कौन जाने ? कोशिश तो की जाये ? कैसे मिलूँ ?'

वह कार की ओर गया, पर अँगुलियों को चटकाता वापस चला आया। साहस बटोर न पाया था, इतने दिनों बाद, इस हालत में मृणालिनी से मिलना आसान न था।

अन्दर जाकर गटा-गट शराब निगल गया, शराब अब वह

"आप कहाँ ठहरी हुई हैं ?"

"यहीं, दिन-रात काम रहता ही है, यहीं नर्सों के क्वार्टर्स में रहती हूँ, यहीं भोजन आदि का प्रबन्ध है।"

"हूँ ?"

"सब ठीक है, आपकी प्रेक्टिस कैसे चल रही है ?"

"चल रही है," रामू ने सिर नीचा कर लिया, "कितने दिन हुए हैं आपको यहाँ आये हुए ?"

एक-डेढ़ महीना हो गया है।"

"और आपने बताया भी नहीं ?"

मृणालिनी ने कोई उत्तर न दिया। सिर एक तरफ़ फेर लिया। मुसकराई भी नहीं, पूर्ववत गम्भीर रही।

'डाक्टरों को नर्सों के साथ रहना नहीं चाहिए।' रामू कह रहा था।

"ऐसी तो कोई पाबन्दी नही है।"

"अपना घर है, आइये, हमारे यहाँ रहिये।"

"धन्यवाद, मैं नहीं चाहती, खैर, आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं, एक स्त्री का किसी और के घर रहना ठीक नहीं है।..."

"जी, शायद हमारे साथ चाय-पानी करने से तो कोई परहेज़ नहीं है ?"

"जी नहीं, पर समय ही नहीं मिलता।"

"अच्छा, तो" रामू झट उठा, मृणालिनी भी उठी, दोनों के मुख आमने-सामने थे। रामू ने मुख पर रूमाल रख लिया, मृणालिनी भौंहें सिकोड़ती, लम्बी साँसे लेने लगी। उन्हें शराब की बू आ रही थी, "हूँ," उनका हूँ कहना था कि रामू को लगा जैसे हिम्मत ने उसका साथ सहसा छोड़ दिया हो।

वह आगे-पीछे देखता चला गया, कुछ खुश भी। आखिर मैं मिल तो सका, मैंने सोचा था कि वे न मिलेंगी। क्या-क्या कहना चाहा था पर बात ही न निकली, वाह···कन्धे ऊपर-नीचे करता वह अपनी कार में जा बैठा।

उस दिन वह 'क्लब' भी न गया, मरजी हुई कि शराब . ..., लेकिन पिये बग़ैर न रह सका।

२५

एक बार मृणालिनी से क्या मिला कि रामू फिर उनसे मिलने गया। वे तब व्यस्त थीं, यद्यपि उनकी ड्यूटी का समय समाप्त हो चुका था।

रामू उनके कमरे में था, उसने कमरे में घुस कर दरवाज़ा बन्द करना चाहा, कोई दुरुद्देश्य न था। मृणालिनी ने उठकर दरवाजे खोल दिये। परदे ऊपर कर दिये और चुप बैठ गई।

"आप शायद बहुत व्यस्त न थीं?" रामू ने पूछा।

"व्यस्त तो थी?"

"आप क्या सदा इसी कमरे में रहेंगी? क्या यहीं जिन्दगी काट देंगी? लोग कहते हैं काकिनाड़ा खराब शहर नहीं है, भले ही देखने लायक चीजें न हों, कार है, कहीं बाहर जाया जा सकता है।"

"बाहर जाना तो सम्भव न होगा।" मृणालिनी उठी और उसके पास जाकर लम्बी-लम्बी साँसे लीं। रामू की बातें कुछ ऐसी थीं कि उनको सन्देह होने लगा था कि कहीं उसने पी न रखी हो, उन्हें मालूम था कि वह यों बढ़-चढ़कर बातें करके अपने को धोखा दे रहा था।

"देखिये, पिया न कीजिए, आपकी तबीयत खराब है और खराब हो जायेगी।"

"आपको किसने बताया कि मैं शराब पीता हूँ।"

"किसी के बताने की क्या आवश्यकता है, शक्ल बता रही है, साँसें बता रही हैं।"

"जब सबने किनारा कर लिया हो तो शराब का साथ ढूँढ़ना ही पड़ता है।"

"आप शराब का साथ लेकर अपने से भी किनारा करते हैं? किनारा करने की क्या बात है, सोचने का फ़र्क है। जब शादी होती है और अपना संसार बसाया जाता है तो ऐसा ही लगता है। गृहस्थी के बाद, सम्बन्धियों का साथ वैसा तो न रहेगा, जैसे बचपन में था। इसलिये पीने की क्या ज़रूरत थी? अगर यह सच भी है तो शराब पीने से तो वे पास नहीं आ जायेंगे, उनको पास लाने की कोशिश कीजिये, अगर आप चाहते हों..."

"जी, कहना आसान है। जो दूर भागते हों, क्या वे पास बुलाये जा सकते हैं? क्या बुलाने पर आते है?"

"शराबी हो जाने से तो आने वाले भी दूर भागते हैं। पियक्कड़ों का कोई नहीं होता सिवाय शराब की बोतल के, आप भी क्या बातें कर रहे हैं? बच्चे वग़ैरह न हुए?"

"पत्नी से ही आफ़त है, बच्चे हों तो......।"

"ग़लत खयाल है, बच्चे हो गये तो पत्नी......हाँ-हाँ गृहस्थी सुधरेगी। पत्नी को भेजिए, मैं ऑपरेशन कर दूँगी, यदि आपको संकोच होता हो।"

"मेहरबानी, मगर कोई जरूरत नहीं है।"

"हूँ," मृणालिनी ने गम्भीर होकर सिर मोड़ लिया। रामू को

सिहरन-सी हुई। "मगर आज तो मैंने नहीं पी है।" उसने कहा।

"जी, मैं जान गई हूँ।"

"आप जानती नहीं हैं, मैं, खैर शराब पीता हूँ और कोई होता तो जहर निगल जाता।" रामू सिगरेट निकालकर हथेली पर ठोकने लगा। उसने सोचा था कि मृणालिनी कुछ उत्सुकता दिखायेगी, पर उन्होंने 'हूँ' तक न किया, और गम्भीर होकर बैठ गईं, जैसे कह न पा रही हों। "आप जा सकते हैं।"

विवश हो रामू को कहना पड़ा, जिसका वह प्रेम न पा सका, कम-से-कम उसकी सहानुभूति तो मिले, "पैसे के लिये मेरी शादी हुई, और ऐसे घर में जहाँ सिवाय पैसे के किसी चीज़ की पूजा नहीं होती। कीमत नहीं होती, पूछ नहीं होती। मैंने आपके प्रभाव में उनका धन उनको वापस दे दिया, ससुर से पैसा मिला था, इसलिये पिता ने देना छोड़ दिया·····।"

"एक से लेने-देने की क्या ज़रूरत है? आप तो डाक्टर हैं···।"

"जी हाँ, प्रेक्टिस करने दें तब न? ग़रीब मरीज़ आते हैं तो भगा देते हैं, अमीर आते नहीं है। नौकरी करने नही देते, नौकरी करूँगा तो तबादला होगा और ये अपनी खेती-बाड़ी और लड़कों को छोड़कर रह न पायेंगे। घर को दूध की दुकान बना रखा है।"

"आप बच्चों की-सी बातें कर रहे हैं, जैसे आपका अपना [illegible] अस्तित्व ही न हो।"

"जी·····शायद आप ठीक कह रही हैं, मैं पहली [illegible] डाक्टर हूँ, परिवार में पहला पूर्णतः शिक्षित, मेरे सम्बन्ध [illegible] से हैं। मुझे दोनों के साथ रहना है, और मैं कहीं [illegible] हूँ।"

"आप सब कुछ समझते हुए भी·····।"

"कुछ कर नहीं पाता हूँ, यही तो मेरी मुसीबत है।"

"हूँ।"

"कुछ करने नहीं दिया जाता, कुछ कर नहीं पाता, सब नाराज़ हैं, नाखूश हैं।" रामू की आवाज़ कहते-कहते रुक गई, आँखों में तरी आ गई। "इसलिये शराब पीता हूँ।"

"शराब पीने से जो कुछ आप करना चाहेंगे वह भी न कर पायेंगे।"

"……तो आप नहीं आइयेगा ? बहुत कुछ कहना है।"

"मैं नहीं आ सकती।"

"नहीं आ सकती ?" रामू आँसू पोंछता यकायक बाहर चला गया। उसका मन टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, यह मृणालिनी समझ सकती थी। पर वह मूर्ति की तरह खड़ी रही, फिर कमरे के अन्दर गई, दरवाज़े बन्द कर लिये।

२६

'आखिर विधवा है, फिर अकेली, पुराना परिचय, तो फिर ऐसी ऐंठ रही है, हाँ।' रामू ने झुंझलाहट में यह सोचा तो फिर पछताया कि उसने क्यों यह सोचा था।

'वह बात क्यों नहीं करती है, जब इतनी सलाह देती है तो यह क्यों नहीं समझ पाती कि मैंने जो कुछ किया है वह अपनी मरज़ी से नहीं किया है। अब भी क्या जाता है ? साथ मिल गया तो वे सब जा आज डा० रक्षित के पास जा रहे हैं, अस्पताल जा रहे हैं, हमारे यहाँ

भागे-भागे आयेंगे। मेरी ज़िन्दगी हरी हो उठेगी। आनन्द, तब मुझे शराब पीने की ज़रूरत ही न होगी।' शराब का खयाल आते ही रामू ने शराब पीनी चाही, पर पी नहीं। कमरे में चहल-कदमी करने लगा।

पत्नी को आश्चर्य हो रहा था कि रामू पहले की तरह बाहर न जा रहा था। पूछने की उत्कंठा हुई, "क्यों, आजकल बाहर नहीं जाते हैं?" उसने दरवाज़े के चौखट के पीछे से पूछा? "क्या पैसे खत्म हो गये हैं? अब मेरे पास गहने भी तो नहीं रह गए हैं।" उसकी पत्नी ने कड़वी आवाज़ में कहा। उसने मीठा होना न सीखा था। रामू ने उसकी ओर एक बार देखा, जाने क्यों वह अपनी मेज़ पर देखने लगा, उसकी पत्नी की नज़र भी उस तरफ़ गई।

मेज़ पर मृणालिनी का फ़ोटो था, जो कई दिनों से रामू ने रख रखा था। अब वह मेज़ पर रख दिया गया था, उसकी पत्नी प्रायः उसके कमरे में नहीं आती थी, इसलिये खास डर भी न था।

"हूँ, तो यह लड़की है, नई पकड़ी है?"

"क्या कह रही हो? सम्भल कर बात करो।"

"सम्भल कर बातें करते-करते ही तो यहाँ तक आ गई हूँ। अब और क्या है, करो मज़ा, किसी दिन भुगतोगे और मेरे पास ही आओगे, आखिर मैंने किया ही क्या है?" वह चिल्लाई, रोती-रोती चली गई। उसके पिता घर में थे, रामू कुछ कहता तो ख्वाहम-ख्वाह बात बढ़ती। वह वहाँ से चला गया, कहाँ जाता। आजकल तो सब सड़कें उसके लिए अस्पताल की ओर ही जाती थीं।

मृणालिनी के कमरे मे गया, वह न थीं। कमरा खुला था। शायद वे कहीं गुसलखाने में गई हुई थीं। वह अन्दर जाकर बैठ गया। अन्दर से कमरा बन्द कर लिया। थोड़ी देर बाद मृणालिनी आईं, अन्दर से

कमरा बन्द था उन्हें पहले अचरज हुआ, फिर तुरन्त ताड़ गईं कि कौन हो सकता था, पर उन्हें रामू का यह कार्य पसन्द न था।

"एक स्त्री के कमरे में आपको इस तरह नहीं आना चाहिये।" मृणालिनी ने कहा।

"अगर किसी को कहीं जाने की जगह न हो तो……?"

"हूँ।"

"नाराज़ न होइये, मैं घर नहीं रह पाता हूँ, कहीं जा नहीं पाता हूँ, जब से मैंने आपको छोड़ा है, तब से मेरी हालत क्या रही है। यह तो मैं जानता हूँ, नहीं तो भगवान्……हो सकता है यह बहुतों पर गुजरती हो, पर सब की अपनी-अपनी अलग कहानी है, ऊपर-ऊपर मिलती-जुलती, पर अन्दर एकदम भिन्न-भिन्न। हर किसी का अपना अनुभव है।"

मृणालिनी ने कपड़े ठीक करने शुरू कर दिए, जैसे उसकी बात न सुनने का संकल्प कर लिया हो, पुरानी बातों की याद ज़बर्दस्ती रोक रही हो।

"क्या आपने कभी प्रेम ही न किया था? अगर प्रेम किया था तो किस तरह इस आसानी से वह भूल गई हैं?"

"आप जानना चाहेंगे? तो सुनिये, शायद आपका फ़ायदा हो। मैंने कभी आपको प्रम के लिए प्रोत्साहित नहीं किया। मैं विधवा थी, कुछ-कुछ भाग्यवादी। मैं न सोचती थी कि भाग्य मुझ पर क्यों खुश होगा। मैं स्वयं आशा कर पाती थी, मैं तटस्थ रही, आखिर हुआ वैसा ही, फिर भी मुझमें वही दिल है, जो प्रेम का भिखारी है। मैंने प्रेम किया, पर……तुम जानते ही हो, पहले मैंने अपने को सेवा में भुला देना चाहा, अब भी चाहती हूँ, अब काम में भूले हुए हूँ।"

"सिर्फ़ भूले ही न?"

२७

इतना सब हो गया था। उसने रात-भर में मृणालिनी के पास न जाने का निश्चय किया था, पर सवेरा हुआ और वह मृणालिनी के पास हाज़िर। कमरे में मृणालिनी न थी। ताला लगा था। रामू वहीं चहलकदमी करने लगा। वह कभी जाने की सोचता तो दो-चार कदम आगे रखता और फिर वापस चला आता।

आती-जाती नर्सें उसे देखतीं, मन-ही-मन हँसतीं। मृणालिनी के पास डा० रामाराव आ रहे थे यह सब जान गये थे। वैसे वहाँ आदमियों का आना मना था, पर डा० रामाराव का लिहाज़ कर कर्मचारी कुछ न कह रहे थे।

यह बात डा० वीरस्वामी पिल्लई तक भी पहुँची थी, उन्हीं का आदेश था, डा० रामाराव के आने पर कोई पाबन्दी न लगाई जाये। क्लब में जब रामू न आया तो डा० वीरस्वामी ने कहा, "अब वे क्या आयेंगे, वे तो डा० मृणालिनी पर लट्टू हैं, अच्छा ही है। वह डाक्टर उसके साथ उलझी रहती है, और हमें कुछ फुरसत मिल जाती है, बहुत पुराना मामला लगता है।" लोगों में इस पर बातचीत हुई होगी।

यह भी सम्भव है कि रामू के पिता को भी यह बात पता लग गई हो। उन्होंने अभी तक बुलाया तो नहीं था, सोच रहे होंगे कि कैसे बुलायें? वे निश्चिन्त थे, आजकल वे कभी-कभी घूमने भी निकल जाते थे। किसी मित्र ने ज़रूर कहा होगा।

रामू कुछ दिन पूर्व ही उनसे मिला था, अपने छोटे भाई की शादी-पर। छोटे भाई की शादी में उन्होंने इतनी दिलचस्पी न दिखाई। कदम-

कदम पर उससे सलाह-मशवरा किया, दहेज के बारे में भी उसी का कहना सुना गया। वे लड़की भी स्वयं न देखने गये थे। छोटा भाई माँ को साथ ले गया था। शादी भी बिना किसी बहुत दिखावे के हो गई। भाई और उसकी पत्नी मजे में थे। दोनों ने एक-दूसरे को पसन्द किया था, क्यों न मज़े में रहते?

रामू को लग रहा था कि उसके बारे में ग़लती करके ही पिताजी ने वैसा किया था, शायद पछता रहे होंगे। मगर किसी से कुछ कहेंगे नहीं, दुःख भी सहेंगे तो अकेले-अकेले। अन्दर-अन्दर। किसी को कुछ न मालूम होगा। विचित्र स्वभाव है।

······अगर मैं अब जाकर कहूँ कि मैं मृणालिनी से विवाह करने जा रहा हूँ तो क्या वे मान जायेंगे, पहले यह तो माने? मानेगी कि नहीं? वह नहीं चाहती कि बदनामी हो, मैं भी नहीं चाहता। सारा काकिनाड़ा जानने लगा होगा······इस सबका भी असर होगा, पर यह प्रेम नहीं, ब्लेक-मेल है, और वह भी मृणालिनी-जैसी स्त्री से। छी, लानत है मुझे।

मृणालिनी आई, उसके साथ एक स्त्री थी। शायद साथ की कोई डाक्टर। नई मालूम होती थी। रामू को अचरज हुआ। मृणालिनी इस तरह अन्दर चली जैसे कोई अपरिचित खड़ा हो।

वह कमरे के अन्दर गई, वह स्त्री भी। स्त्री कोई कागज़ लेकर बाहर आई कि रामू अन्दर चला गया। मृणालिनी खीझी हुई थी। गुस्से में थी।

"तुम सोचती होगी कि मैं फिर आ पड़ा। मैं भी नहीं आना चाहता, पर बरबस आ जाता हूँ, बुरा न मानो।" रामू ने गिड़गिड़ाते हुए कहा. मृणालिनी की नाखुशी गम्भीरता में जम-सी गई।

"मेरी बात मान जाओ, कम-से-कम हमारे घर चाय तो पी आइये।"

"मैं नहीं आऊँगी, समय नहीं है, मुझे बहुत काम है।"

"नहीं आयेंगी ?"

"नहीं, और सुनिये। आप भी न आया कीजिये। जो कुछ मुझे कहना था मैंने कह दिया है, और मैं अपना निश्चय बदलने के लिए तैयार नहीं हूँ। आप मुझे भूल जाइये।"

"मैं तो शराब पीकर भी नहीं भूल पाता हूँ, भूल ही पाता तो यहाँ क्यों आता ?"

"आते हुए शर्म होनी चाहिये, आप डाक्टर हैं। आपको अपनी फ़िक्र न हो, तो कम-से कम एक स्त्री का खयाल रखिये······"

मृणालिनी इस तरह कह रही थी, जैसे गुस्सा न हो और गुस्सा दिखा रही हो। रामू जान गया। वह ठहाका मारकर हँसा।

"हँसते काहे को हैं ?······ऐसी कौनसी हँसने की बात है ?" मृणालिनी ने कहा। रामू ने उसका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने छुड़ाना चाहा, पर रामू ने छोड़ा नहीं। मृणालिनी चिल्ला भी न सकती थी। रामू ने उनको पकड़ कर बिठा दिया। उनके बहुत निकट बैठ गया। मृणालिनी को सचमुच गुस्सा आ गया था।

उन दिनों में भी, जब दोनों में प्रेम था, रामू ने इस प्रकार की जबर्दस्ती न दिखाई थी। न पाशविक लोलुपता ही; मगर अब तो वह कई स्त्रियों को जान गया था। स्त्रियों के सामने साहस न छोड़ बैठता था, कभी-कभी तो उद्धत भी हो जाता था। वह वही कर बैठा, जो किसी और बाज़ारू स्त्री से कर बैठता था।

"आपने समझ क्या रखा है मुझे ?"

"अपनी प्रेयसी······"

"बकवास न करो, शादी हो चुकी है, पत्नी के साथ रहो, तुम्हारे जीवन में अब मेरा कोई स्थान नहीं है, छोड़ो मुझे।"

"एक ऐसा स्थान है, जो और कभी कोई नहीं ले सका।"

"मुझ पर जो बीती सो बीती, मैं नहीं चाहती कि किसी स्त्री पर पति के जीते-जी, वह बीते……।"

"उपदेश न दो, मृणालिनी, आओ चलो।" रामू ने चुम्बन करना चाहा, मृणालिनी ने उसे दूर हटा दिया, कमज़ोर तो वह था ही, नीचे गिर गया, और वे स्वयं बाहर बरांडे में जा खड़ी हुई।" जाओ, वरना ठीक न होगा फिर यहाँ कभी न आना, जो हुआ सो हुआ, फिर किसी स्त्री से यह न करना। चले जाओ।" मृणालिनी ने कहा।

रामू हाँफता-हाँफता नीचे मुँह किये चला गया, पीछे मुड़कर भी न देखा।

और मृणालिनी कमरा बन्द करके औंधे मुँह बिस्तर पर पड़ी-पड़ी सिसकने लगी।

शाम हुई, रामू फिर मृणालिनी को टटोलता हुआ आया। शर्म तो उन्हें आये जिनका प्रेम दिखावटी हो। कमरा बन्द था, खिड़की [illegible] झाँककर देखा, मृणालिनी न थी। वह स्त्री थी, जो सवेरे [illegible] आई थी। क्या मृणालिनी का तबादला हो गया है? क्या [illegible] चली गई है? कहीं आत्महत्या तो नहीं कर ली है? [illegible] कारण हूँ, वह सिर पीटता चला गया। एक-दो से पूछा [illegible] ने कुछ न बताया।

वह घर न जाकर सीधे क्लब गया, वहाँ [illegible] पी-पी कर कै करने लगा।

"अरे, यह तो कै कर रहा है, कहीं [illegible] है? शहर में हैजा है।" गणपति शास्त्री [illegible]

"यह पियक्कड़ की उल्टी है, हैजे के जर्म भी शराब को देखकर भागते हैं,......" डा० वीरस्वामी पिल्लई नशे में हँसते-हँसते बक रहे थे।

उस दिन शास्त्री को अपनी कार में रामू को घर पहुँचाना पड़ा।

२८

जगन्नायक पुर में हैजा फैला हुआ था। यह काकिनाड़ा का पुराना महल्ला है। जन-संकुल। रहने को तो यहाँ बड़े-बड़े रईस और जाने-माने भी रहते हैं, पर आजकल ज्यादह गरीब ही अधिक हैं, नौकर, मजदूर।

कई मर चुके थे, कई मर रहे थे। दवा-दारू की जा रही थी, पर हैजा फैलता-सा लगता था। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई थी। छूत की बीमारियों का अस्पताल भरा पड़ा था। डाक्टरों को फुरसत न थी। जो भाग सकते थे वे शहर से भाग रहे थे। भगदड़ मची हुई थी। सब डर रहे थे।

काकिनाड़ा में मछलियों का व्यापार बहुत होता है। समुद्र पास है, मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, सस्ती होती हैं, गरीब इन पर प्रायः गुजारा करते हैं। मछलियाँ बेचना शहर में बन्द कर दिया गया था। बताया गया था कि मछलियों के कारण ही हैजा फैला था। यह भी बताया गया कि कहीं बाहर से कोई हैजा का केस आया और देखते-देखते शहर में हैजा फैल गया। कई कारण बताये जा रहे थे। कौन-सा कारण ठीक था, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था।

नतीजा यह हुआ, मछियारों को काम न रहा। और जो लोग मछलियाँ खाकर जीते थे, फ़ाकाकशी करने लगे।

श्री वापिराजु को मछली खाने की पुरानी आदत थी। भोजन में चाहे कुछ भी हो, और मछली न हो, वे ठीक तरह भोजन न कर पाते थे। दो-चार बार तो उन्होंने भोजन यों ही निगल लिया, जैसे डाक्टर की हिदायत पर वह सब-कुछ खाना मना हो। फिर वे मछली खा ही बैठे। जब कुछ न हुआ तो वे मछली बिना किसी प्रतिबन्ध के खाने लगे।

क्योंकि सब डरे हुए थे, इसलिए उनकी पत्नी का हुक्म था कि और कोई मछली न खाये। जिस बर्तन में मछली पकाई जाये उसमें कुछ न पकाया जाये। वे पति को मछली खाने से रोक भी न सकती थीं। औरों को मछली खाने की खास आदत भी न थी, पति को स्वस्थ देख वे हठ भी न कर सकती थीं।

कारखाने में बहुत से लोग ऐसे थे जिनका कोई-न-कोई रिश्तेदार मर गया था। डा० रामू—रामाराव का कहीं पता न था। खबर भेजी गई, पर रामू न आया। श्री वापिराजु यह न समझ सके, उससे वे झगड़ा भी मोल लेना न चाहते थे, जवान लड़का, होनहार लड़का, अगर हैजे के केस लेने लगा और उसे ही कुछ—भगवान न करे—हुआ तो डाक्टर कृष्णाराव ही देख रहे थे।

रामू शराब पी रहा था, जब शराब न मिलती तो ऐसी दवाइयाँ पीता जिनमें शराब की थोड़ी-बहुत मात्रा थी, और तो और कहीं देसी शराब मिलती तो वह उसे भी गटक जाता, अगर वह न मिलती तो ताड़ी पीता, चौबीसों घण्टे नशे में रहता।

मृणालिनी क्या गयी कि रामू का ज़िन्दगी से ही जी उचट गया। वह जीना न चाहता था, जैसे वह तब तक मृणालिनी की आशा में ही जी रहा हो।

भावुक व्यक्ति। सीधा-सादा, बड़ा होता हुआ भी बच्चों की तरह मासूम, नादान। भटका था पर रास्ता न भूला था। ग़लतियाँ तिस पर पछतावे का भार, बँधा जीवन, खुला प्रेम, विवशताएँ, दिन-रात सोचता —'जीकर क्या करूगा ?' निराशा ही निराशा।

हैज़ा फैला तो मछलियाँ मँगाने लगा, यद्यपि वह कभी न खाता था, हैज़े के रोगियों के पास उसने जाना चाहा, पर उसके ससुर ने उसे वस्तुतः कमरे में बन्द कर दिया, 'कहीं मर-मरा गया तो—' उनको भी भय था। डाक्टर है तो क्या ? क्या डाक्टरों पर हैज़े का असर नहीं होता है ?

हैज़े के केस, लोग मरेंगे, मरीज मरेंगे और उस डाक्टर के पास कभी भी कोई न आयेगा, जिसके यहाँ मरीज मरने के लिए ही आते हों। यह बात उड़ी कि नहीं, प्रेक्टिस हमेशा चौपट —ससुर अपनी तरफ़ से ठीक ही सोच रहे थे। वे क्या जानें, डाक्टर की नैतिकता, डाक्टर के कर्त्तव्य।

जो ससुर दिन-रात गालियाँ देते थे कि दामाद शराब पर रुपया बरबाद कर रहा था, स्वयं उस दिन उसके लिए कहीं से शराब ले आये थे, उसके कमरे में शराब पहुँचा दी, वह शराब पीता मस्त पड़ा रहा, दुनिया मरे, अपनी बला से मरे, मरता उनका क्या उद्धार करेगा। कुछ देर चिल्ला-चिल्लाकर वह यों सोचने लगा था।

शाम को एक घटना घटी और रामू बेख़बर पड़ा रहा। श्री बापि-राजु के कारखाने में एक इन्जीनियर काम करता था, मद्रास से उसे लाया गया था। उसका काकिनाड़ा में कोई न था। होटल में खाता था, एक कमरा किराये पर ले रखा था। शाम को पता लगा कि वह कै कर रहा था।

श्री बापिराजु गये। कइयों ने उनको जाने से रोका, पर कोई रोक न

पाया। "अरे भाई, वह हमारे भरोसे जीता है, अगर अब हम उसके काम न आये तो हम किस काम के ? इतनी दूर से आया है, तनख्वाह देने मात्र से तो हमारी ज़िम्मेदारी नहीं खत्म हो जाती ?" उन्होंने अपने लड़के मोहन राव से कहा, क्योंकि वे दलीलें पेश कर रहे थे।

श्री वापिराजु उसके यहाँ गये, घर आये, और उनकी हालत ख़राब हो गई। कै-पर-कै, दस्त-पर-दस्त, हैजे के लक्षण थे। तुरंत आदमी रामू के पास दौड़ाया गया। फाटक पर ही रामू के ससुर मिले। वे ससुर, जिनकी मानवीयता कभी की रुपये-पैसे के ढेर में लुप्त हो चुकी थी, स्वार्थ की, लोहे की मूर्ति-से फाटक पर खड़े थे।

उन्होने सरासर झूठ बोल दिया—रामू घर में नहीं है, सामर्ल कोट गया हुआ है। आदमी पूछताछ क्या करता ! वह भागा-भागा वापस गया।

एंग्लो-इन्डियन महिला के चकले के कुछ दूर, सड़क की परली तरफ़ छूत की बीमारियों का अस्पताल था, वही हैजे के बीमार आ रहे थे। यानी श्री वापिराजु के घर के समीप ही अस्पताल था, आदमी वहाँ भेजा गया। वह एक स्त्री के साथ आया, वे थकी हुई थीं। लगता था जैसे कई दिनों से न सोई हों, चेहरा उतरा हुआ था, डा० मृणाल्निनी थीं।

वे अन्यत्र जा सकती थीं। कुछ दिन पहले ही हैजे के केस आने लगे थे, पर इसकी सूचना न दी गई ताकि जनता में भय न पैदा हो जाये, यद्यपि आवश्यक कार्यवाही की जा रही थी। कोई डाक्टर यहाँ न आना चाहता था, मृणाल्निनी ने स्वय यहाँ आने का निश्चय किया, और उनको इस का आदेश भी मिल गया। दो-तीन दिन से उनको एक मिनट का विश्राम न था। उन्हीं के कहने पर अस्पताल के नौकरों ने रामू को उनका पता न दिया था।

श्री वापिराजु जी की उम्र तो बड़ी थी ही, फिर कमज़ोर। हैजे

ने जल्दी ही उन्हें निगल लिया। डा० मृणालिनी कुछ भी न कर सकीं। उनके मुँह पर उन्होंने चादर खींच दी। वे हाथ धो रही थीं कि दीवार पर नज़र गई——रामू की बड़ी फोटो थी, विश्वविद्यालय की नियमित वेषभूषा में—— जब उसने डाक्टरी की डिग्री ली थी।

मुझे इस तरह रामू के घर आना था ? हाय भगवान् ? क्या मेरे होते मेरे सामने रामू के पिता की यों मौत होनी थी ? रामू कहाँ है ?

यह पूछने का समय न था, वह बाहर चली गई। श्री बापिराजु का बड़ा परिवार सिर पीट-पीट कर ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था और डाक्टर लड़के को पता भी न था कि उसके पिता का, जिन्होंने उसके जीवन पर इतना प्रभाव डाला था, देहान्त हो चुका था।

२६

रामू को बड़ा सदमा पहुँचा। वह बच्चों की तरह शोक करने लगा। वह भले ही अपने पिता पर पिछले दिनों रुष्ट रहा हो, पर वे ही तो इस दुनिया में एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनसे वह डरता था, जिनको वह चाहता था, जिनसे न वह दूर रहा, न रह पाता था——असाधारण व्यक्तित्व, असाधारण प्रभाव।

इस ससुर ने मुझे समझ क्या रखा है ? मुझे जानवर समझा, शराब की बोतल दी और कमरे में बन्द कर दिया। मरते पिता के पास भी न जाने दिया, बेदिल-जान, क्या ऐसे लोग भी होते हैं ? जिनका इन जैसों-से पाला नहीं पड़ता, वे सोचते हैं कि ऐसे लोग होते ही नहीं हैं, और जिनका पाला पड़ता है वे हर किसी को इनका छोटा-बड़ा संस्करण

समझते हैं। गालियाँ देने से क्या फ़ायदा ? अब क्या होगा ?

मैं डाक्टर हूँ, पिता का लाड़ला, और पिता की सेवा-शुश्रूषा न कर सका। किस काम की मेरी डाक्टरी ? पैसे के पीछे भागता फिरा, पैसा भी न पा सका, और मानवीयता खो बैठा, और सब इस धनी ससुर के कारण, धन पर मरने वालों के कारण।

मैं बच्चा तो नहीं, क्यों सुनी ? अब नहीं सुनूँगा, पिताजी तो नहीं रहे—हाय पिताजी ! हाय—रामू अपने घर पर था। अन्त्येष्टि-क्रिया हो चुकी थी। भाई-बन्धु सब अपना रोना रो रहे थे—बड़े भाई परशुराम भी आये थे। वे भी शोकातुर थे। माँ की तो बुरी हालत। ऐसी दीवार-सी थी जिसके ऊपर की छत उड़ गई हो, और नीचे फ़र्श भी न रहा हो।

रामू के मन में कितनी ही बातें, कितनी ही घटनायें। जीवन की छोटी-छोटी घटनायें, बड़ी-बड़ी होकर सामने आ रही थीं। उसने जो कुछ किया, जो कुछ होना चाहा, उन सब में पिताजी का हाथ था। उन्होंने क्यों न कहा—धन की फ़िक्र न करो, तुम्हारे पास काफ़ी है, डाक्टरी धनोपार्जन का साधन ही नहीं है सेवा का भी है। धन लो, पर धन के लिए ही चिकित्सा न करो। सेवा न करो, तब किसी की फ़िक्र न करता, इस ससुर को भी दूर रखता। एक बार तो कहते ? रामू सोच रहा था।

कहते, 'धन न हो तो कोई नहीं पूछता, धनी की पूछ होती है,' लेकिन खुद ऐसे लोगों की पूछ करते थे जिनके पास धन न होता था। मालिक थे, आखिर इस इन्जीनियर के पास जाने की क्या जरूरत थी, मगर गये। कितने ही पार्श्व थे उनके व्यक्तित्व के, फिर मुझे क्यों नहीं डा० रक्षित की तरह प्रेक्टिस करने दी ?

—ये ससुर जा भिड़े होंगे मन की बात कहते भी तो न थे

सब निगल जाते थे, नीलकंठ। सोचा होगा ससुर ने लाख रुपया दिया है, ससुर की सुनेगा, मेरी नहीं सुनेगा, मैं क्या करूँ ? अगर वे सुनते तो —? इसलिए मेरे बिगड़ने पर भी मुझे डाँटा-फटकारा नहीं, क्या अच्छा होता यदि डांटते-फटकारते ? मदद की, मैं उस मदद का भी फ़ायदा न ले सका. मैं भी क्या अभागा हूँ और संसार मुझे भाग्यशाली समझता है हाय —पिताजी, वह फूट-सा पड़ा। वे सब बातें जिन्हें जान-बूझ कर वह भुलाता-सा आया था, याद आने लगीं।

उसने शराब न पीने का निश्चय कर लिया था, निश्चय तो उसने कई बार पहले भी किया था और हर बार निश्चय को तोड़ा था।

दो-तीन दिन में ही उसकी हालत खराब हो गयी। जो आदमी शराब पीकर हर चीज़ को भूलने की कोशिश करते हैं, शायद बिना शराब पिये कुछ नहीं भूल पाते हैं। शाम तक तो वह घर में ही रहा। अन्धेरा होने के बाद भी वहीं रहा, जब सब एक-एक करके सोने लगे, तो वह धीमे से खिसक गया, और एंगलो-इन्डियन महिला के चकले में चला गया। वहाँ शराब भी मिलती थी।

कोई पुराना बिल बकाया था। एंगलो-इन्डियन महिला ने शराब देने से इनकार कर दिया। रामू साथ पैसे लाना भूल गया था। वह गिड़गिड़ाया, एक बार गुस्से में वह बाहर गया, फिर चला आया, आदत से लाचार, आत्मग्लानि से विवश। अपनी रिस्टवाच दे दी, पूरे छः सौ की रिस्टवाच, और शराब पीने लगा, पागल की तरह, एक के बाद एक गिलास। कमबख्त मार्था भी जाने कहाँ थी, उसे खबर भिजवाई। पर वह न आई। रामू के पास उन दिनों उतना पैसा न था, और वे परवाने जो पैसे को देखकर आते हैं, कम ही उन दिनों आते थे।

ग्यारह-बारह बजे तक शराब पीता रहा, कै करता, मगर फिर

शराब उँडेल लेता। कै करता, फिर शराब पीता, कौन वहां जगह साफ़ करता, रामू को बाहर निकाल दिया गया, घर पास था। आर में न आया था। सड़क पर कुछ लड़खड़ाया और पीपल के नीचे जा गिरा। पीपल का पेड़, छूत की बीमारियों के अस्पताल के फाटक के पास था। कभी वह कराहता, कभी बड़बड़ाता। थोड़ी देर बाद एक जीप आई, जीप की रोशनी ठीक उसके मुँह पर पड़ी। आँखें चौंधिया गईं। "अरे, हटाओ, मरते को क्यों मारते हो।"

आवाज़ परिचित थी, पर यहां? क्यों? क्या इन्हें मालूम हो गया है? कै? डा० मृणालिनी जीप से उतरीं, वे सब मरीजों को देखकर अपने क्वार्टर वापस आ रही थीं। वे उसको जीप में बिठाकर अपने बंगले में ले गईं।

"अरे आप!" रामू ने सिर ऊपर-नीचे करते हुए, मुँदी आँखें खोलकर देखा---"तो आप यहीं थीं? और यहां? बताया क्यों नहीं था?" रामू प्रश्न करता जाता था और मृणालिनी डाक्टर की तरह उसका मुँह थाम रही थीं।

"तुम यहाँ क्यों आये?"

"जिनका और कोई सहारा नहीं, यह रोगीखाना ही उनका आसरा है।"

"हूँ, तो तुम यहाँ हो?"

"तुमने बड़ी अच्छी जगह चुनी है, उस घर में छूत की बीमारी मोल लो और यहां इलाज करवाओ, हूँ।" रामू ठहाका मार कर हँसा, जैसे मृणालिनी को वहाँ देखकर उसका नशा यकायक चला गया हो। "मुझ पर दया न कीजिये, मैं आपकी दया के लायक नहीं। यह सब फिर आपकी ही तो देन है? अगर आपका साथ होता तो मैं भी डा० रशिम की तरह रहता।"

"अब क्या देरी हो गई है ? चोट लगी और पी बैठे, यह तो नीच-से-नीच आदमी, जिसके पास दो पैसे हों, कर सकता है। हर कोई इस तरह ही बिगड़ता है, और अगर आप-जैसे भी यों ही बिगड़ें तो यह पढ़ाई, यह डाक्टरी सब बेकार है, आप क्यों पीते हैं ?"

"प्रेक्टिस के लिये, समझे," उसे अपना पुराना इरादा याद आया। "बड़े लोग पीते हैं, बड़े लोग प्रेक्टिस दिलवाते हैं, प्रेक्टिस के लिये पीता हूँ, हूँ हूँ" डा० रामा राव मुख तक हाथ इस तरह लाया जैसे हाथ में शराब का गिलास हो, "अरे, वाह......"

"क्या कह रहे हैं ? प्रेक्टिस के लिये बड़े लोगों की ज़रूरत नहीं है, बीमारों की ज़रूरत है। इस अभागे देश में बीमारों की कमी नहीं है, बीमारों को खोजने की ज़रूरत नहीं, वे ही डाक्टर खोजते आते हैं, बशर्ते कि डाक्टर मिल जायें। तुम अपने ऊपर धन-दौलत के ताले लगाये रहो तो कौन आयेगा, हाँ, कई प्रेक्टिस पैसे के लिए करते हैं, धन जुटाते हैं, जुटायें, पर तुम उनका अनुकरण क्यों करते हो ? तुम्हारा अपना काफ़ी है ही, मैं कब कहती हूँ कि सेवा भी बिलकुल निःशुल्क ही हो, मैं तो यह ही कहती हूं कि दृष्टिकोण धन का नहीं होना चाहिये—ख़ैर, पीना अच्छा नहीं, मत पिया कीजिये।"

"प्रेक्टिस के लिये बीमार चाहिये, बड़े लोग नहीं," रामू कोई सूत्र-सा दोहरा रहा था, "छी !" यह शराब बेकार है, नशा नहीं आता, सिर्फ़ कै आती है।"

"आप लायर नहीं हैं, लायर ढूँढते हैं इस तरह प्रेक्टिस, डाक्टर नहीं, मत पीजिये, भगवान् के लिए......" मृणालिनी ने कहा, उसकी आँखों में तरी आ गई थी।

उन्होंने रामू का मुँह पोंछ दिया। कपड़े झाड़कर साफ़ कर दिये।

"तो आप यहाँ रहती हैं ? मुझे जाने के लिए मत कहिये, नहीं तो

मैं पीऊँगा, पिये बग़ैर नहीं रह पाऊँगा।" रामू ने कहा।

"तुम यहाँ नहीं रह सकते।"

"नहीं रह सकता तो मैं फिर रंडीखाने में जाऊँगा, उस नहर में जा कूदूँगा।"

"नहीं, ऐसा न करो, मत पियो।"

"मेरे साथ आओ, नहीं तो मैं पीऊँगा, तुम न होगी, शराब होगी, मौत होगी।"

"अच्छा, जाओ, न मरो, मैं डाक्टर हूँ, जिलाना मेरा काम है। तुम्हें भी जिलाऊँगी··· जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।"

"जाय भाड़ में यह रक्षित······नहीं, नहीं।"

"अच्छा, अब तुम जाओ, ड्राइवर, ······मैं तुम्हारे घर से आई हूँ। तुम्हारे पिताजी को न बचा सकी, कम-से-कम तुम तो रहो··· ··· पीना मत।" रामू रोने लगा। मृणालिनी रोने लगी, वे और बातें न कर सके।

ड्राइवर रामू को उसके घर छोड़ आया।

३०

सवेरे-सवेरे डा० मृणालिनी की जीप रामू के घर आई। रामू सो रहा था। उसे उठाया गया। बताया गया कि डा० मृणालिनी की हालत नाजुक थी। रामू भागा-भागा गया।

वह डाक्टर जो औरों के हैज़े का इलाज कर रही थी, यकायक शायद स्वयं हैज़े का शिकार हो गई थी।

रामू को रास्ते में सन्देह हुआ कि कहीं मृणालिनी ने ज़हर तो नहीं निगल लिया था, भगवान् करे, वह जीवित रहे, स्वस्थ रहे, हे भगवान् !

"जल्दी चलो," रामू ड्राइवर से कह रहा था, यद्यपि पचास मील की रफ्तार से कार जा रही थी।

रामू मृणालिनी के कमरे में पहुँचा, काँपने-सा लगा। "तुम ज़रा दूर ही रहो।" मृणालिनी ने हाँफते हुए कहा। पर रामू पास चला ही गया, आवश्यक चिकित्सा करने लगा।

"अच्छा हुआ कि तुम आ गए, नहीं तो, हो सकता है······मैंने हास्पिटल छोड़कर अच्छा न किया। तुम आते थे, तुम मेरे कारण बिगड़ रहे थे, इसलिए मैं चली आई। मेरे पास आते रहते तो तुम बिगड़ते रहते, मेरे आने के बाद भी तुम बिगड़े, मैं तुम्हारे साथ काम करने के लिए भी मान गई पर······भगवान् को शायद यह गवारा नहीं। तुम्हारी वर्तमान परिस्थिति के लिये शायद मैं भी जिम्मेदार हूँ, कौन जाने ? मैंने भी चोट सही है ···।"

"तुम बोलो मत, सब ठीक हो जायेगा।" रामू ने कहा।

"शराब मत पीना, शराब पीकर कोई नहीं भूलता, भूलना भी है तो काम में अपने को भूलो। बहुत कुछ करने को है। डाक्टर तो और भी अधिक कर सकता है, स्वास्थ्य का दान दो। सेवा, जो सोचा था वही करो, फिर भूलने के लिये कुछ न रहेगा, शपथ करो कि न पियोगे।"

"हाँ।"

रामू ने चौंककर उसके मुँह पर ग़ौर से देखा, चेहरा मुरझा गया था, रक्तहीन-सा। बड़ी-बड़ी आँखें धँस गई थीं। वह गौर वर्ण भी काला

सा हो गया था, पर मुँह पर वही आकर्षण था, जिसने उसको सालों से आकर्षित किया था।

"मुझे याद न करना, तुम्हारी पत्नी है, उसका कोई दोष नहीं है। उसके साथ रहो, शादी के बाद वही सब-कुछ है। शादी के बगैर मैं बहुत-कुछ होती हुई भी कुछ नहीं हूँ, कुछ नहीं हूँ।" मृणालिनी की साँसें जोर से चलने लगीं। रामू रोने लगा। तब और डाक्टर भी आ गए थे। डा० वीरस्वामी पिल्लई वगैरह।

"प्रेक्टिस के फेर में न पड़ो, डाक्टर का कर्त्तव्य निभाओ······ स्वाइटज़र,······सरवा, सेवा, सेवा।" यह कहती-कहती डा० मृणालिनी ने अन्तिम श्वास छोड़ दिया।

रामू ज़ोर से रो पड़ा। सिर पीटने लगा, छाती ठोकने लगा। डाक्टरों को अचरज हो रहा था।

मृणालिनी के सम्बन्धियों को सूचना दी गई, पर शव को तुरन्त जलाने का प्रबन्ध किया गया। रामू ने स्वयं अन्त्येष्टि-संस्कार किया, वही तो मृणालिनी का सर्वस्व था, और वहाँ था। वह जीवन-भर प्यार करती रही, पर उससे दूर रही। जब कभी रामू के मन में यह बात उठती तो आँसू के झरने छूटने लगते।

दो व्यक्तियों ने उसके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव डाला था-- पिताजी और मृणालिनी, और वे दोनों ही न थे। पिता की स्मृति है, सम्पत्ति है और डा० मृणालिनी का प्रशस्त मार्ग है, दुनिया है। मैं एकाकी नहीं, मुझे मार्ग दिखाने के लिए दो को बलि देनी पड़ी। मैं चलूँगा डा० मृणालिनी के प्रकाश में, उसी के मार्ग पर, सारा संसार मेरा है, सारी जनता मेरी सम्पत्ति है, इससे बढ़कर सम्पत्ति इस दुनिया में कहाँ है?

रामू बदल गया, बिगड़ा तो वह पहले भी न था। साहस न था, अब वह साहस भी आ गया।

वह अब उन सब कर्त्तव्यों से भली-भाँति परिचित था, जिनको वह तब तक धन-लिप्सा से आवृत करता आया था।

३१

रामू के घर पर मरीज़ों के जत्थे-के-जत्थे आते, रोगियों की कोई कमी न थी। जो कोई जो कुछ देता, लेता, नहीं तो किसी से कुछ न माँगता और जो दे सकते थे उनसे लिये बगैर भी न रहता। रामू को आश्चर्य हुआ कि बहुत से बहुत कुछ दे जाते थे, आख़िर मरीज भी तो मुफ्त इलाज नहीं करवाना चाहते हैं।

प्रेक्टिस चल पड़ी। पर उसके पिता जीवित न थे, सन्तुष्ट होने के लिये, न सहयोग देने के लिए मृणालिनी ही थी। ससुर सन्तुष्ट थे कि उसने शराब पीनी छोड़ दी थी, खर्च कम हो गया था।

डा० रामाराव—रामू, जो डा० रक्षित की परछाईं से भी दूर रहता था। अब उनके अच्छे मित्रों में से था। उनके रोगी कम न हुए थे, रामू की प्रेक्टिस ने उनकी प्रेक्टिस कम न की थी।

उसकी पत्नी न बदली थी, वह बदल गया था, इसलिये वह गृहस्थी फूलों की सेज भले ही न हुई हो, पर वह चुभती भी न थी।

रामू का कायाकल्प हो गया था···पुनर्जन्म।

\+ \+ \+

एक दिन वह पुल पर खड़ा था, नया पुल, पुराना तोड़ दिया गया

था। दूर देख रहा था, वही नहर, वही किश्तियाँ, उसकी मरज़ी हुई कि उस इंजीनियर की तरह पत्नी को लेकर किश्ती में निकले, फिर यकायक एंग्लो-इन्डियन महिला का मकान नज़र में आया, उसने नज़र मोड़ ली।

उसे वहाँ खड़ा पा, लोग उसको झुक कर नमस्कार करते जाते थे, वही भीड़, जिससे वह कभी दूर रहता था, आज उसको सम्मान की दृष्टि से देखती थी। सामने देखा, घंटाघर बन चुका था, नया भवन और पुरानी घड़ी—वही रामू, पर नया जीव।

—रामू, तुम फिर उपमाओं में न फँसो, तुम्हें काम है, बहुत कुछ करना है, हे, भगवान्! मुझे शक्ति दो…" वह मुसकराता चला, कार में जा बैठा, और ग़रीब रोगियों को देखने चला गया।

हिन्दी और उर्दू के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार

द त्त भा र ती

के उपन्यास